नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 4 अंक 10
नवम्बर 2002 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

अनुराग पुस्तकालय
एवं
वाचनालय

महान सोवियत समाजवादी क्रांति की 85वीं वर्षगांठ के अवसर पर

बुझ नहीं सकती अक्टूबर क्रांति की मशाल

(सम्पादक)

मानव समाज के इतिहास की कुछ युगपरिवर्तनकारी घटनाएं ऐसी हैं, जिन्हें अंधेरों में डुबो देने की जितनी अधिक कोशिशें की जाती हैं, वे उतनी ही अधिक प्रकाशमान हो उठती हैं। 1917 में 24 अक्टूबर (नये रूसी कैलेण्डर के अनुसार 7 नवम्बर) को सम्पन्न महान सोवियत समाजवादी क्रांति मानव इतिहास की ऐसी ही एक घटना है। जिस दिन से रूसी बोल्शेविक पार्टी और महान लेनिन के नेतृत्व में मज़दूर वर्ग ने रूस में बुर्जुआ वर्ग की राज्यसत्ता को क्रान्तिकारी आम बगावत के जरिये उखाड़ फेंका और दुनिया के पहले समाजवादी राज्य की नींव डाली, उस दिन से लेकर आज तक एक भी दिन ऐसा नहीं गुजरा जब दुनियाभर के साम्राज्यवादी -पूंजीवादी शोषकों-लुटेरों, उनके भाड़े के कलमघसीटों द्वारा विश्व इतिहास को आगे ले जाने वाली इस घटना को बदनाम करने, इसके नेताओं पर तरह-तरह के कीचड़ उछालने की कोशिश न होती हो। दुनिया को उलट-पुलट कर रख देने वाली मज़दूर वर्ग की यह ताकत ही है कि इस महान क्रान्ति के 85 वर्ष गुजरने के बाद भी इसका खौफ साम्राज्यवादी-पूंजीवादी लुटेरों के दिलों में जमा हुआ है और इस क्रांति को बदनाम करने के लिए वे मौके और बहाने वे आज भी हर दिन ढूंढते रहते हैं।

भूमण्डलीकरण के यशगान के इस दौर में सबसे अधिक निंदा अभियान अगर किसी विचारधारा का हुआ है, तो वह है मज़दूर क्रान्ति की विचारधारा। "मुक्त बाजार" और "मुक्त व्यापार" की महिमा का बखान करते हुए दुनिया

भर के तमाम साम्राज्यवाद-पूंजीवादपरस्त बुद्धिजीवियों-लेखकों-विचारकों ने एक बेहतर दुनिया बनाने का सपना देखने को शेखचिल्ली का सपना घोषित कर दिया।

सोवियत संघ व पूर्वी यूरोप में कम्युनिस्ट नामधारी हुकूमतों के पतन के हवाले दे -देकर लोगों को यह यकीन दिलाने की कोशिश नये सिरे से अभूतपूर्व जोर-शोर से शुरू हो गयी कि पूंजीवाद ही सर्वोत्तम समाज व्यवस्था है। यह व्यवस्था ही मानव समाज की सबसे ऊंची चोटी है। यानी 'इतिहास का अंत' हो गया है। इससे आगे निकलने की कोशिश करना महामूर्खता है। हालांकि, जैसे-जैसे पूंजीवादी दुनिया के स्वर्ग अमेरिका, समूचे यूरोप, जापान से लेकर एशिया-अफ्रीका-लैटिन अमेरिका की तमाम पूंजीवादी व्यवस्थाओं तक का संकट गहराता जा रहा है, वैसे-वैसे 'समाजवाद के अन्त' की तमाम घोषणाओं का स्वर धीमा पड़ता जा रहा है।

भूमण्डलीकरण के नाम पर पूंजीवादी विश्व अर्थतंत्र के संकटों को दूर करने के लिए जिन नीतियों पर दस-बारह साल पहले अमल शुरू हुआ था, उसके नतीजों से दुनिया भर में लोगों के भीतर गुस्से का बारूद इकट्ठा होता जा रहा है। यह जगह-जगह छिटपुट रूप से अभी ही फूटना शुरू भी हो चुका है। इन हालात में महान अक्टूबर क्रांति की यादें दुनिया की बेहतरी चाहने वाले लोगों के दिलो-दिमाग में पहले से भी अधिक ताजा हो उठी हैं। दुनिया भर में नये सिरे से अक्टूबर क्रांति की रोशनी में इस नयी सदी की क्रांतियों के रास्ते की खोज तेज हो गयी है। दुनिया भर में ऐसे नौजवानों की, वर्ग सचेत मज़दूरों, बुद्धिजीवियों की तादाद बढ़ती जा रही है जो भूमण्डलीकरण की नीतियों से पैदा हो रही तबाही-बर्बादी से बचने के रास्तों की खोज में अतीत की सर्वहारा क्रांतियों का नये सिरे से अध्ययन-मनन कर रहे हैं, उन रोशनी की किरणों को पहचानने की कोशिश कर रहे हैं जो इन सर्वहारा क्रान्तियों से फूटी थीं।

यह एक कड़ुवी सच्चाई है कि आज सोवियत संघ, पूर्वी यूरोप से लेकर चीन तक जहां भी मज़दूर वर्ग ने अपनी हुकूमतें कायम की थीं, पूंजीवाद की बहाली हो चुकी है, मज़दूर वर्ग सत्ता से बेदखल किया जा चुका है। इन समाजों में नये सिरे से लोभ-लालच का घिनौना पूंजीवादी खेल जोरों पर है। बेकारी, भुखमरी से लेकर तमाम प्राकृतिक आपदाओं व वेश्यावृत्ति, जुआखोरी, शराबखोरी तक तमाम सामाजिक बुराइयों का नये सिरे से बोलबाला हो चुका है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं हुआ कि ये महान मज़दूर क्रान्तियां हमेशा के लिए इतिहास के अंधेरे में गुम हो चुकी हैं। ऐसा कभी नहीं हो सकता। पूंजीवाद और समाजवाद के बीच, यानी पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग के बीच ऐतिहासिक वर्ग महायुद्ध के पहले चक्र में मज़दूर वर्ग की एक फिलहाली हार हुई है। जैसा कि पहले भी हुआ है, मज़दूर वर्ग ने अपनी जीतों से ज्यादा हारों से सीखा है। आज दुनिया भर में सर्वहारा क्रान्तिकारी विश्व सर्वहारा क्रान्ति के पहले चक्र के अनुभवों का निचोड़ निकालने और उनके सबकों की रोशनी में नये चक्र की क्रान्तियों की तैयारी में जुटे हुए हैं।

1956 में निकिता ख्रुश्चेव के गद्दार गुट के नेतृत्व में तख्ता पलट द्वारा सर्वहारा वर्ग के पहले समाजवादी राज्य पर पूंजीपति वर्ग द्वारा कब्जा कर लेने और पूंजीवाद के रास्ते पर चल पड़ने से पहले समाजवाद के प्रयोगों के लिए जो भी समय मिल सका था, उस समय में ही मज़दूर वर्ग ने ऐसी-ऐसी उपलब्धियां हासिल की थीं जो चमत्कारी थीं। क्रान्ति के तत्काल बाद मज़दूर वर्ग के नवजात राज्य को चौदह साम्राज्यवादी देशों के हमले का मुकाबला करना पड़ा। बहादुरी और कुर्बानियों की एक से बढ़कर एक चमत्कारी

मिसालें कायम करते हुए बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में मज़दूर वर्ग ने भीषण युद्ध

(पेज 10 पर जारी)

प्रचुरता के बीच अकाल और भुखमरी का ताण्डव

लोग मरें अपनी बला से, कुर्सी वालों की चमड़ी बची रहे!

(विशेष संवाददाता)

दिल्ली। पंजाब के मशहूर नाटककार गुरशरण सिंह का एक बहुचर्चित नुक्कड़ नाटक है- 'हवाई गोले'। देश की संसदीय व्यवस्था की अमानवीयता पर करारा प्रहार करने वाले इस नाटक का एक दृश्य कुछ इस प्रकार है :

विपक्ष : देश के एक हिस्से में अकाल और भुखमरी से जो मौतें हो रही हैं, उसके लिए सरकार क्या कर रही है?

सरकार : सरकार अकाल से निपटने के लिए जोर-शोर से राहत कार्य चला रही है। हालात काबू में हैं। सरकार को बदनाम करने के लिए विपक्ष भुखमरी से मौतों का हल्ला बचा रहा है।

विपक्ष : फिर मौतों की जो खबरें आयी हैं, क्या वे पूरी तरह झूठी हैं?

सरकार : यह सही है कि कुछ

मौतों की खबरें आयी हैं। लेकिन सरकार को जो रिपोर्ट मिली है उसके मुताबिक ये मौतें बीमारी से हुई हैं।

विपक्ष : यह झूठ है। लोग भूख से मरे हैं।

सरकार : हमारी रिपोर्ट सच है। लोगों ने पत्तियों का साग खा लिया था। इसलिए वे बीमार पड़े, जिसके कारण मौतें हुईं।

विपक्ष : लोगों ने पत्तियों का साग इसलिए खाया क्योंकि वे भूखे थे।

सरकार : 'बट', टेक्नीकली तो वे बीमारी से ही मरे न!

राजस्थान, उड़ीसा, मध्य प्रदेश व महाराष्ट्र में भुखमरी से दर्जनों लोगों के मरने की जो खबरें पिछले दिनों

(पेज 6 पर जारी)

आपस की बात

जाके पांव न फटे बिवाई...

'बिगुल' के अक्टूबर 2002 अंक में नया स्तम्भ 'बकलमे ... खुद' एक अच्छी शुरुआत है। मैं इसका तहे दिल से स्वागत करता हूं। इस स्तम्भ के शुरू होने से अखबार में नयी जान आ गयी है। यह मज़दूर और मज़दूर संगठनकर्ताओं को लिखने के लिए प्रेरित करेगा। इससे अपने दर्द को रचनाओं में ढालने के लिए उनमें हिम्मत पैदा होगी : स्तम्भ की शुरुआत के लिए सम्पादक मण्डल को लाल सलाम।

स्तम्भ की शुरूआती कहानी साथी अजय द्वारा लिखी गयी 'एक मौत' बहुत प्रभावित करती है। क्योंकि लुधियाना, दिल्ली, गाजियाबाद, नोएडा, फरीदाबाद आदि शहरों में आज के मज़दूरों की वास्तविक जिन्दगी का बिल्कुल सही चित्रण कहानी में किया गया है। बेशक हम मज़दूरों द्वारा लिखी गयी कहानी, लेख या चिट्ठी में शब्द ज्ञान, सलीके से शब्दों की सजावट और ढोंग, फरेब झूठ की कमी हो लेकिन मज़दूरों की आज की जिन्दगी के बारे में सौ फीसदी सच्चाई लिखी होगी।

एक कहावत है कि "जाके पांव न फटे बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई"। ट्रेनों-बसों की खिड़कियों से 'जग का मुजाहिरा' करने वाले ये ढोंगी वामपंथी लेखक झूठ फरेब ही लिखेंगे क्योंकि हकीकत से कभी इनका पाला नहीं पड़ा। ये मज़दूरों के बेड़ों-बस्तियों में जाते, वहां रहते, खाते, पीते, सोते, तब न इनको हकीकत का अहसास होता। ऐसे लोग तो संशोधनवादी विचारधारा से प्रभावित होकर षड्यंत्रकारी लेख ही लिख सकते हैं। इस स्तम्भ की पहल इन ढोंगी वामपंथी लेखकों के लिए करारा जवाब होगा।

मैं पिछले एक साल से 'बिगुल' का नियमित पाठक हूं। 'बिगुल' से बहुत कुछ सीखा है। इस अखबार ने मुझे जिन्दगी की नयी राह दिखायी है। 'बिगुल' के बारे में अपने जज्बात को एक कविता के माध्यम से लिखकर भेज रहा हूं :-

एक दिन मज़दूर क्रान्ति की मशाल/बन जायेगा बिगुल
हम मज़दूरों को/सही राह दिखायेगा बिगुल
इसे छोटा न समझो/सबका शिक्षक बन जायेगा बिगुल
मज़दूर क्रान्ति की राह के हर रोड़े को/हटायेगा बिगुल
जाति धर्म के झगड़े छोड़ो/हर भेद को/एक दिन मिटायेगा बिगुल
होगी जब मज़दूरों की मुक्ति/उसी दिन गीत खुशी के गायेगा बिगुल
रूस चीन का इतिहास दुहराने के लिए/हम मज़दूरों को जगायेगा बिगुल
जागो उठो, मज़दूर साथियो/ आज हम सबको/क्रान्ति का पाठ पढ़ायेगा बिगुल
क्यों अज्ञानी बनकर पिसते हो/हकीकत को सामने लायेगा बिगुल
पढ़ो बिगुल तो ज्ञान बढ़ेगा/ आगे लड़ना सिखायेगा बिगुल।

नागेन्द्र, लुधियाना

अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता

मैं 'बिगुल' का नियमित पाठक हूं। इसे इत्मीनान से पढ़ता हूं। इसको पढ़ने पर ऐसा लगता है जैसे कोई भाई अपनी हालत बयां कर रहा हो, फिर पूरी बात पर गंभीरता से मिल-जुल कर सोचा-विचारा जा रहा हो।

मैं भी बिगुल के माध्यम से अपनी फैक्ट्री सी-176, से -10 में मालिक और कारीगरों के बीच, हुए लफड़े के माध्यम से नोएडा में मज़दूरों की हालत और मालिकों की बढ़ती मनमानी के बारे में मज़दूर भाइयों को बताना चाहता हूं।

मेरी फैक्ट्री में लेदर के कपड़े तैयार होते हैं। उसमें नब्बे प्रतिशत कारीगर ही हैं। सभी पीस रेट पर काम करते हैं। लगभग सात महीने पहले सभी कारीगरों ने संगठित होकर अपने को परमानेन्ट किये जाने की मांग मालिक के सामने रखी। जिस पर मालिक ने कान नहीं दिया। इसके बाद मज़दूर हड़ताल पर चले गये। फिर भी मालिक के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। कुछ दिन हड़ताल चलने के बाद कुछ कारीगर काम पर चले गये, जो नहीं गये उसको कम्पनी ने निकाल दिया। वैसे ज्यादातर कारीगर हड़ताल पर ही थे, अंत में मज़दूरों ने केस किया। डी.एल.सी. के यहां चक्कर लगाते-लगाते दो सीजन बीत गया, लेकिन कारीगरों की मांग को नहीं माना गया।

लगभग चार-पांच महीने तक यूं ही कारीगर डी.एल.सी. के दौरे पर जाते रहे पर अगली डेट और सिवाय निराशा के और कुछ हाथ नहीं लगा।

अंत में मज़दूरों ने यह तय किया कि अब कोई रास्ता नहीं है, अत: अपना हिसाब ले लिया जाय। लेकिन जो मज़दूर नेतृत्व कर रहे थे उन्होंने हिसाब लेने से मनाही की। परंतु चार-पांच को छोड़कर सभी ने अपना पैसा ले लिया। कुछ दिन बाद वह भी मज़दूर जो नेतृत्व में थे, हार-थक कर हिसाब लेने आये। मालिक ने पे स्लिप मांगा। मज़दूरों ने पे स्लिप लाकर दिया। उसके बाद भी मालिक पैसा देने के लिए तैयार नहीं था। फिर मज़दूरों और मालिक के बीच तू-तू -मैं-मैं होने लगी। मालिक ने एक मज़दूर को दो थप्पड़ मार दिये। गुलामों के ढंग से मालिक के व्यवहार किये जाने पर मज़दूर भी बौखला उठे और मालिक को भी पीटा। उसके बाद मज़दूर गेट से बाहर आ गये। मालिक ने उसी बीच गुंडों को फोन से बुला लिया। उनके पास रिवाल्वर था, उन सबने मज़दूरों को गालियां दीं तथा जान से मारने की धमकी दी। साथ ही साथ ये भी कहाकि आज के बाद पैसे के लिये गये तो 'पुटका दूंगा'। उसके बाद मज़दूर घर चले गये और आज तक उनको पैसा नहीं मिला।

इस पूरी घटना से मुझे यह बात अच्छी तरह समझ में आयी कि 'अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता' तथा दूसरी बात यह कि 'जिसकी लाठी उसकी भैंस'। आज पूरे नोएडा की अधिकतर फैक्टरियों का यही हाल है। इसलिए एक कम्पनी के लेदर कारीगर कुछ नहीं कर सकते। अत: जरूरी है कि लेदर कारीगरों का नोएडा स्तर पर एक जुझारू क्रांतिकारी संगठन नये ढंग से बने। तभी स्वाभिमान के साथ लेदर कारीगर जी सकता है। इसके लिये लेदर कारीगरों के बीच से समझदार साथियों को आगे आना होगा। आज के टूट-फूट, बिखराव को समझना होगा। तभी जाकर कोई मुकम्मिल संघर्ष की तैयारी हो सकती है।

एक मज़दूर, नोएडा

मेहनतकश साथियों के लिए कुछ जरूरी पुस्तकें

बिगुल पुस्तिका श्रृंखला
कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा
- लेनिन (5/-)
मकड़ा और मक्खी
-बिल्हेल्म लीब्कनेख्त (2/-)
ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके
-सर्जी रोस्तोवस्की (2/-)
अनवश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं (10/-)
समाजवाद की समस्याएं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति (12/-)

बिगुल विक्रेता साथी से मांगें या इस पते पर 19 रुपये रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजें :
जनचेतना, डी-68, निरालानगर, आईटी चौराहा, लखनऊ

प्रिय सम्पादक जी,

बिगुल का फरवरी-मार्च अंक अनायास एक साथी के यहां पढ़ने को मिला, गुजरात नरसंहार नोएडा के मज़दूरों पर, और होण्डा पावर प्रोडक्टस के मज़दूरों की लड़ाई पर लिखा लेख पढ़कर एक तरफ खून खौल उठा वहीं दूसरी तरफ लड़ने का जज्बा भी बढ़ गया, बिगुल के बारे में अबकी सिर्फ इतना कि यह हमारी बात सिर्फ कहता नहीं बल्कि लड़ता मिला।

पेट की अंतड़ियों को
सटने से बचाने के लिए
लड़ते मेरे मज़दूर साथी
बूढ़े मां-बाप की बीमार चारपाई
को तोड़ने के लिए
लड़ते मेरे मज़दूर साथी
पत्नी की धंसी आंखों से गिरते आंसू
और बच्चे के कपड़े, फीस के लिए
लड़ते मेरे मज़दूर साथी
अपने मांस को हड्डियों से विदा करते
हाथों के काम के लिए
लड़ते मज़दूर साथी
तुम्हारे हर इंकलाब का
एक जिन्दाबाद हमारा है।

बिगुल की इस लड़ाई में हमको भी साथ लीजिए हम अभी अकेले हैं? नहीं! थे।

निरंतर कुमार
एक युवा मज़दूर, गोरखपुर

प्रिय भाई,

बिगुल का अक्टूबर अंक पहली बार पढ़ा। NGO से टांका ... क्या सच्चाई है! इन मित्रों को संभलने की जरूरत है लेकिन क्या ये संभलेंगे? ये तो उनके ऐशो-आराम का मामला है। आपके बकलमें-खुद में भी इसी सच्चाई का विस्तार है। भाषा भी बहुत अच्छी है।

फिर विस्तार से पढ़कर लिखूंगा। कल ही तो मिला है यह अंक।

सभी को मेरी शुभकामनाएं।

प्रेमपाल शर्मा

मज़दूरों की जिन्दगी की सच्ची तस्वीर

भाई अजय की कहानी 'एक मौत' पढ़ी। मध्यवर्गीय पाठक मज़दूर वर्ग की इस कहानी की वास्तविकता पर भले ही अविश्वास का भाव प्रदर्शित करे, मगर किसी चटकल, गन्ना मिल या निर्माणाधीन औद्योगिक संस्थानों के ठेका मज़दूरों की जिन्दगी का यथार्थ-चित्रण करने में कहानी सक्षम है।

भाई अजय के प्रयास को बधाई देना चाहिए।

विजय, खटीमा,
(ऊधमसिंह नगर)

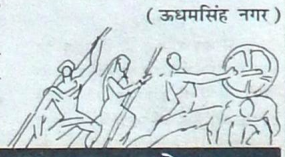

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आवादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित कराएगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

बिगुल यहां से प्राप्त करें

- शहीद पुस्तकालय, डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवा सदन, **मर्यादपुर**, मऊ
- मौर्या बुक स्टाल, सआदतपुरा (निकट शाहवेज), मऊनाथभंजन, **मऊ**
- जनचेतना, जाफरा बाजार, **गोरखपुर**
- विजय इन्फारमेशन सेन्टर, कचहरी बस स्टेशन, **गोरखपुर**
- विश्वनाथ मिश्र, नेशनल पी.जी. कालेज, **बड़हलगंज**, गोरखपुर
- जनचेतना, डी 68, निरालानगर **लखनऊ**
- जनचेतना स्टाल, काफी हाउस के पास, हजरतगंज, **लखनऊ**, (शाम 5 से 8-30)
- राहुल फाउण्डेशन, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, **लखनऊ**
- विमल कुमार, बुक स्टाल, निकट नीलगिरि काम्प्लेक्स, ए ब्लाक, इंदिरानगर, **लखनऊ**
- विजय कुमार, 55/3, E.W.S आवास विकास, रुद्रपुर (ऊधमसिंहनगर)
- प्रोग्रेसिव बुक सेंटर, विश्वनाथ मंदिर गेट, बी.एच.यू. **वाराणसी**
- राजीव वर्मा स्टूडेण्ट एजुकेशनल सेंटर, मैनाताली (पुलिस चौकी के पास), मुगलसराय, जिला-चन्दौली
- राजेन्द्र प्रसाद, रेणु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, **रेणुकूट**, सोनभद्र
- सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार-फेज-1, **दिल्ली**
- ललित सती, एल.आई.सी., फैज रोड शाखा, **दिल्ली**
- नई किरण पुस्तक भंडार, एफ-56, हरकेश नगर, ओखला, नई दिल्ली
- डी. के. सचान, एस.एच.- 272, शास्त्रीनगर **गाजियाबाद**
- सुनील कुमार सिंह, सेक्टर-12 बी, 3159, **बोकारो** इस्पातनगर, **बोकारो**
- गणपतलाल, ग्राम काजी रसूलपुर, पो.-तेघड़ा, **बेगूसराय**
- पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, **पटना**
- विमर्श, 22, स्वास्तिक काम्प्लेक्स, रसल चौक जबलपुर
- नरभिन्दर सिंह, द्वारा डा. सुखदेव हुन्दल, ग्रा/पो. **सन्तनगर**, जिला-सिरसा
- पंकज, प्लाट नं. 33, सेक्टर-15, सोनीपत (हरियाणा)
- सुखविंदर द्वारा कॉ0 दशरथ लाल, मकान नं. 14, लेबर कॉलोनी, गिल रोड, **लुधियाना** (पंजाब)
- राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मंदिर, प्रधान नगर, सिलीगुड़ी, **दार्जीलिंग**
- बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, **कलकत्ता**
- विश्व नेपाली पुस्तक सदन, श्रवनपथ, बुटवल, रुपनदेई, **नेपाल**
- विशाल पुस्तक सदन, बिजुवार बाजार, प्युठान राप्ती अंचल
- विशाल पुस्तक पसल, अस्पताल लाइन, बुटवल, **लुम्बिनी**, नेपाल

होण्डा के मज़दूर आंदोलन के कीमती सबक : दो अलग दृष्टिकोण -एक बहस

'बिगुल' के अगस्त '2002 अंक में हमने 'होण्डा पावर प्रोडक्ट्स', रुद्रपुर के मज़दूरों की चार माह तक चली हड़ताल का समाहार *'होण्डा का मज़दूर आंदोलन- कुछ जरूरी निचोड़, कुछ कीमती सबक'* शीर्षक से प्रकाशित किया था।

हमें साथी सुभाष शर्मा का एक पत्र प्राप्त हुआ है, जिसमें उपरोक्त लेख में व्यक्त दृष्टिकोण और निष्कर्षों पर कुछ सवाल उठाये गये हैं। मज़दूर आंदोलन की आज की समस्याओं, दिशा और कार्यभारों के बारे में साथी सुभाष शर्मा की पोजीशन चूंकि लेख की पोजीशन से बुनियादी तौर पर अलग है, इसलिए हम यहां साथी सुभाष शर्मा का पत्र और बिगुल प्रतिनिधि (रुद्रपुर) का उत्तर प्रकाशित कर रहे हैं। मज़दूर संगठनकर्ताओं के लिए यह एक बेहद उपयोगी बहस है। इस पर हमें और पत्रों एवं प्रतिक्रियाओं का इंतजार है।

-सम्पादक

साथी सुभाष शर्मा का पत्र

'बिगुल' अगस्त 2002 अंक में प्रकाशित होण्डा श्रमिक आंदोलन सम्बन्धी टिप्पणी आज के समय में बहुत ही गुरुत्वपूर्ण और समय-अनुसार अत्यन्त उचित है। इसलिए 'बिगुल' को मेरा धन्यवाद।

पर 'बिगुल' की इस टिप्पणी पर मेरे कुछ प्रश्न हैं :-

1. लिखा गया है कि "कभी-कभी हारने के लिए भी लड़ना पड़ता है ताकि भविष्य में जीतने के लिए लड़ा जा सके ..."। हम लोग जानते हैं कि ट्रेड यूनियन लड़ाइयों को अपनी वर्ग ताकत के विकास की नींव पर खड़े होकर किसी भी तरीके से लड़ाई को जीतने की इच्छा लेकर ही लड़ा जाता है। इसके बजाय रणकौशल के नाम पर श्रमिक वर्ग के बाहर की विभिन्न शक्तियों को इस्तेमाल करने पर श्रमिक आंदोलन की लगाम मालिक वर्ग, स्थापित राजनीतिक दलों व बुद्धिजीवियों के हाथ में चली जाती है।

परंतु इसके विपरीत अगर "हारने के लिए लड़ने" की जरूरत की बात कही जाये तो? क्या ऐसी लड़ाई या युद्ध में किसी कारखाने के आम श्रमिक सही ढंग से भाग ले सकते हैं? यह ठीक है कि किसी लड़ाई में हार या जीत कुछ भी हो सकता है। पर स्वाभाविक तौर पर जीतने का लक्ष्य सामने रखकर ही, या मांग हासिल करने के लिए ही सभी श्रमिक स्वतः प्रवर्तित मनोभाव के साथ लड़ाई में उतरते हैं। वास्तव में लड़ाई के अंत में कितनी मांगे हासिल हुईं, लड़ाई में रहते हुए श्रमिकगणों में कितनी चेतना विकसित हुई, इन विभिन्न प्रक्रियाओं के परिणाम के तौर पर आम श्रमिकों के पास जीत या हार का अनुभव रह जाता है, जिसका हिसाब पहले से लगाना असम्भव है।

लेकिन हम लोग यह भी देख रहे हैं कि आज की परिस्थिति में श्रमिकों के लिए मांगे हासिल करना अत्यधिक मुश्किल होता जा रहा है। मालिक वर्ग द्वारा नयी आर्थिक नीतियों के तहत किये जाने वाले आक्रमणों को कारखाना स्तर पर रोकते समय मालिक-प्रशासन-स्थापित पार्टियों के गठजोड़ के विरुद्ध एक विषम लड़ाई चलानी पड़ रही है। जिस तरह यह परिस्थिति एक वास्तविकता है, उसी तरह यह भी एक वास्तविकता है कि इन्हीं परिस्थितियों की मार झेलते-झेलते एक-एक कारखाने में प्रतिरोध की कोशिश में श्रमिकों को लड़ाई के रास्ते पर धकेल दिया जा रहा है।

इस अवस्था में भी जहां श्रमिक लोग अपने जोश को दर्शा रहे हैं एवं सबसे गुरुत्वपूर्ण वर्ग संग्राम की नजर से लड़ने की कोशिश कर रहे हैं (जिसका वास्तविक स्वरूप किसी न किसी क्रांतिकारी संगठन के नेतृत्व में आना है), वहीं ये लड़ाइयां अन्य महत्व भी सूचित करती हैं। मांगों पर सम्पूर्ण फैसला न होने के बावजूद इन लड़ाइयों से श्रमिकों को महत्वपूर्ण बोध हासिल हो रहे हैं। मसलन, अपनी यूनियन के संचालन को खाद-पानी देना, लड़ाइयों के प्रति विश्वास में वृद्धि होना और आज की परिस्थितियों में वर्ग संघर्ष का मैदान तैयार करने की आवश्यकता की समझ बनना, अर्थात कुछ मात्रा में वर्ग चेतना का विकास। विभिन्न रूपों में परिस्थिति की अड़चनों के बारे में श्रमिक सचेत हो रहे हैं और व्यापक एकजुटता की जरूरत अनुभव कर रहे हैं- भले ही विभिन्न रुकावटों के कारण धीमी गति से और सीमित मात्रा में। वास्तव में दिखायी यह दे रहा है कि अलग-अलग लड़ाइयों के छोटे-छोटे क्षेत्रों में अभी-भी हार-जीत का फैसला पहले से किये बिना श्रमिक हर पल बुनियादी स्तर पर लड़ रहे हैं और क्रांतिकारी साथी भी उनका साथ दे रहे हैं। ये लड़ाइयां सिर्फ अपनी मांगों को हासिल करने के ट्रेड यूनियनवादी दृष्टिकोण से ही नहीं, अपनी रोजी-रोटी के लिए ही नहीं, वरन मालिकी हमले को हर कीमत पर रोकने की प्रतिबद्धता से लड़ाई चल रही है। वर्ग विचार की नींव पर खड़े होकर लड़ाकू श्रमिकों को इन प्राप्त जगहों को ही मजबूत हाथों से पकड़कर रखना होगा। वास्तव में लड़ाई में भाग लेने वाले श्रमिकों के बीच, विशेषतः अगुआ श्रमिकों के बीच, इस तरह की उन्नत चेतना का रूप देखने को मिल रहा है। "हारने के लिए लड़ने" की प्रवृत्ति से क्या ये विकास संभव है? होण्डा श्रमिकों की लड़ाई का तजुर्बा भी इससे अछूता नहीं हो सकता। फिर 'बिगुल' के लेख में यह बात क्यों आयी?

(2) लेख के अंत में अगुआ श्रमिकों के आगे दो कर्तव्य रखे गये हैं, (क) तमाम श्रमिकों की इलाकाई मजबूत एकजुटता तैयार करने के लिए सघन राजनीतिक प्रचार की जरूरत, (ख) यूनियन के तमाम श्रमिकों की सक्रिय और जुझारू भागीदारी के लक्ष्य में यूनियन का संचालन करना।

प्रश्न है कि तमाम श्रमिकों की इलाकाई जुझारू एकजुटता क्या सिर्फ राजनीतिक प्रचार से ही तैयार हो सकती है? इसके साथ साधारण श्रमिकों की स्वतः प्रेरित भागीदारी का मेल क्या जरूरी नहीं है, जो आज की परिस्थिति में दिखता नहीं? "संयुक्त मज़दूर संघर्ष मोर्चा' या 'होण्डा बचाओ संघर्ष समिति' के तजुर्बे की बात कहते हुए परिस्थितियों की वस्तुगत सीमाओं की बात तो आप लोगों के लेख में ही प्रकाशित हुई है। प्रचार तो लगातार घनीभूत रूप से सिर्फ इलाकाई ही क्यों पूरे देश में संगठित करने का कर्तव्य है। यह क्रांतिकारी संगठनों की तत्कालीन जरूरत बन चुकी है- यह बात निस्संदेह सत्य है। परंतु यह "मज़दूर आबादी की व्यापक इलाकाई एकजुटता" के लक्ष्य में नहीं वरन अगुआ साथियों की एकजुटता के लक्ष्य में होना चाहिए। यह निश्चित ही अति महत्वपूर्ण रूप से अलग चर्चा का विषय होना चाहिए।

पर परिस्थितियों की ठीक इन्हीं सीमाओं के कारण होण्डा के श्रमिकों की लड़ाई या इस तरह की किसी दूसरी लड़ाई में अलग-अलग कारखानों के श्रमिकों की लगातार सहभागिता मिलने की आशा फिलहाल बहुत ही कम है। यह हम लोगों को अच्छी तरह समझ लेना होगा। फलस्वरूप दूसरे कर्तव्य का पालन करना अर्थात यूनियन की लड़ाई संचालन का कर्तव्य जरूरी हो जाता है। कारण कि स्वचालितता की थोड़ी से भी जो चमक वर्तमान में दिख रही है वह कारखाना स्तर पर ही दिख रही है। होण्डा के श्रमिकों की लड़ाई इसी की एक जीती-जागती मिसाल है। और फिर इन लड़ाइयों में से कुछ संख्या में नये अगुआ मज़दूर साथियों को सामने आते हुए देखा जा सकता है। यही साथी आने वाले दिनों में देश भर में श्रमिक वर्ग की एकजुटता को वास्तविक रूप दे सकते हैं। आप लोगों के लेख में भी इस बात का जिक्र है। फिर भी पूरे लेख में अनेक जगहों पर वर्तमान परिस्थितियों की साधारण समस्याओं की चर्चा करते हुए कहीं पर भी यह नहीं दर्शाया गया है कि होण्डा के श्रमिकों ने अपने जीते-जागते संग्राम में किस तरह पुरानी सोच को पीछे छोड़ते हुए लड़ाई का झण्डा पकड़कर नयी राह को अपनाया, उस राह में कितना आगे बढ़े हैं। इसका पूरा ब्यौरा लेख में नहीं है। आप लोगों ने अपने लेख में यूनियन स्तर के इस कर्तव्य के बारे में लिखा है कि "अर्थवादी-सुधारवादी दलदल से बाहर खींचना होगा"। फिर भी होण्डा के इस उदाहरण से लड़ाई की इस मुश्किल घड़ी में असफलता या सफलता के बावजूद वर्ग संघर्ष की राह पर श्रमिक किस तरह ऊपर उठना चाहते हैं, तरह-तरह की सीमाओं के बावजूद इस लड़ाई में इस ठोस कार्यभार को कैसे पूरा किया गया, इसको उजागर नहीं किया गया। आने वाले अंकों में 'बिगुल' इन शंकाओं को दूर कर सके, हम यही आशा करते हैं।

क्रांतिकारी अभिनन्दन के साथ

सुभाष शर्मा, साहिबाबाद

बिगुल प्रतिनिधि का उत्तर

'बिगुल' के अगस्त '2002 अंक में होण्डा मज़दूर आंदोलन का जो सार-संकलन प्रकाशित हुआ था, उस पर साथी सुभाष शर्मा ने कुछ आपत्तियां और कुछ प्रश्न उठाये हैं।

इन प्रश्नों पर अपने विचार रखना हम जरूरी समझते हैं, क्योंकि ये मज़दूर आंदोलन के प्रति एक खास किस्म की सोच को प्रकट करते हैं, जिनसे हमारी सहमति नहीं बनती।

सुभाष शर्मा ने हमारे ऊपर "हारने के लिए लड़ने" की प्रवृत्ति का शिकार होने का आरोप लगाया है। उन्होंने संदर्भों से काटकर लेख का एक वाक्य उद्धृत किया है, *"कभी-कभी हारने के लिए भी लड़ना पड़ता है ताकि भविष्य में जीतने के लिए लड़ा जा सके।"* सुभाष शर्मा का कहना है कि ट्रेड यूनियन लड़ाइयां मज़दूर हर हाल में जीतने की इच्छा लेकर ही लड़ते हैं। उनका यह भी कहना है कि संघर्षों के परिणाम का हिसाब पहले से लगाना असंभव है।

हम उस पूरे संदर्भ को एक बार फिर देखें, जिस संदर्भ में हमने यह लिखा था कि, "कभी-कभी हारने के लिए भी लड़ना पड़ता है ताकि भविष्य में जीतने के लिए लड़ा जा सके।" लेख में हमने विस्तार से उदारीकरण-निजीकरण के दौर की उन विपरीत वस्तुगत परिस्थितियों की चर्चा की थी, जिन परिस्थितियों में होण्डा मज़दूरों का यह आंदोलन चला। फिर हमने उल्लेख किया था कि मालिकान रुद्रपुर प्लाण्ट को किस्तों में बंद करने की साजिश के तहत, किसी भी कीमत पर एल्युमीनियम मशीन शॉप को शिफ्ट करना चाहते थे। इसके बाद हमने लिखा था : *"लेकिन यह तो और बहुत बुरा होता कि मज़दूर चुपचाप अपने भविष्य को सौलबंद होते देखते रहते। उन्हें यथाशक्ति लड़ना ही था, परिस्थितियां चाहे जितनी प्रतिकूल हों। कभी-कभी हार की अधिकतम सम्भावना के बावजूद मज़दूरों को लड़ना होता है, ताकि मालिकों की मनचाही होने को कुछ टाला जा सके, उसकी रफ्तार कम की जा सके और आगे की लड़ाई की तैयारी के लिए समय लिया जा सके। कभी-कभी हारने के लिए भी लड़ना पड़ता है ताकि भविष्य में जीतने के लिए लड़ा जा सके।"*

पाठक देख सकते हैं कि हमें "पराजयवादी" प्रवृत्ति का शिकार सिद्ध करने के लिए सुभाष शर्मा ने किस प्रकार सिर्फ अंतिम वाक्य को उद्धृत किया है और उसे सन्दर्भित करने वाले पहले के वाक्य को गोल कर गये हैं। प्रश्न हमारी मनोगत इच्छा का नहीं बल्कि सामने मौजूद ठोस वस्तुगत परिस्थितियों का था। हमने वस्तुगत परिस्थितियों के आकलन के संदर्भ में यह बात कही है कि कई बार सामने उपस्थित संघर्ष में हार की अधिकतम संभावना, या यूं कहें कि हार तय होने के बावजूद, लड़ना होता है, क्योंकि न लड़ना भविष्य की लड़ाइयों की तैयारी की दृष्टि से और अधिक नुकसानदेह होता है। वैसे भी कुछ मोर्चों की हार या कुछ चौकियों से पीछे हटना पूरी लड़ाई की हार नहीं होती और कुछ लड़ाइयों की हार पूरे युद्ध की हार नहीं होती।

साथी सुभाष शर्मा दरअसल यह मानते ही नहीं कि संघर्ष के परिणामों का कोई आकलन या पूर्वानुमान पहले से किया जा सकता है। उनका मानना है कि *"किसी लड़ाई में हार या जीत कुछ भी हो सकता है। पर स्वाभाविक तौर पर, जीतने का लक्ष्य सामने रखकर ही, या मांगे हासिल करने के लिए ही सभी श्रमिक स्वतः प्रवर्तित मनोभाव के साथ लड़ाई में उतरते हैं।"* पहली बात यह कि हार या जीत महज लड़ने वालों की चाहत या तैयारी आदि पर ही नहीं बल्कि वस्तुगत परिस्थितियों पर भी निर्भर करता है। इन दोनों पहलुओं को मिलाकर देखना और संभावित परिणामों का आकलन करना नेतृत्व का एक अहम काम होता है। स्वाभाविक है कि सभी मज़दूर 'स्वतः प्रवर्तित मनोभाव' से जीतना ही चाहते हैं, लेकिन हालात यदि कठिन हों और यदि मज़दूरों को इसका अहसास न हो तो सही नेतृत्व का यह दायित्व बनता है कि वह मज़दूरों को भ्रम में

(पेज 4 पर जारी)

(पेज 3 से आगे)

होण्डा मज़दूर आन्दोलन के कीमती सबक- एक बहस

रखने के बजाय हालात की कठिनाइयों के बारे में बताये और फिर भी यदि लड़ना ही एकमात्र विकल्प हो तो उन्हें लड़ने के लिए प्रेरित करे।

इस बात को हम होण्डा के उदाहरण से ही स्पष्ट करने की कोशिश करेंगे। मालिकान किश्तों में रुद्रपुर प्लाण्ट को नोएडा ले जाकर ज्यादा सस्ती दरों पर नये मज़दूरों की श्रमशक्ति निचोड़कर ज्यादा मुनाफा कमाना चाहते हैं, धीरे-धीरे रुद्रपुर प्लाण्ट को घाटे में दिखाकर बन्द कर देना चाहते हैं और इसी क्रम में सबसे पहले वे एल्युमीनियम मशीन शॉप को हटाना चाहते हैं- इसकी भनक मज़दूरों को महीनों पहले लग गयी थी। मज़दूरों का एक बड़ा हिस्सा समझता था कि एल्युमीनियम मशीन शॉप हटते ही प्लाण्ट की कमर टूट जायेगी और फिर मालिक जब चाहेगा इसे बंद कर देगा। वे लड़ना चाहते थे। पर नंगा सच यह भी था कि उनमें से अधिकांश को इस लड़ाई की प्रतिकूल स्थितियों का और लड़ाई लम्बी खिंचने का अहसास नहीं था। कौन नहीं जानता कि पिछड़ी वर्ग-चेतना वाले बहुतेरे मज़दूर शुरू में बढ़-चढ़कर लड़ने की बात करते हैं और जब हड़ताल लम्बी खिंचती है तो धरने-जुलूस में भी नियमित नहीं आते और कभी-कभी तो चुपचाप घर चले जाते हैं। ऐसे में, नेतृत्व का काम होता है कि वह संघर्ष के सभी पहलुओं और संभावनाओं से मज़दूरों को परिचित करावे और फिर उन्हें लड़ने के लिए पूरी ताकत लगाने को तैयार करे। होण्डा के यूनियन नेतृत्व ने यही किया। इसमें गलतियां और चूकें हुई, लेकिन उसने यही किया। मज़दूरों को यह बताया गया कि किस प्रकार आज के समय में हालात मालिकान के पक्ष में हैं और लड़ाई बेहद चुनौतीपूर्ण है। यूनियन नेतृत्व ने यह स्पष्ट किया कि लड़ाई लम्बी हो सकती है और यदि मज़दूर जुझारू ढंग से पूरी ताक़त लगाकर लड़ेंगे तो मुमकिन है कि मालिकान कुछ समय के लिए अपने फैसले से पीछे हट जायें और इस स्थिति में मज़दूरों को आगे की लड़ाई के लिए और अधिक तैयारी का समय मिल जायेगा।

लेख में हमने प्रतिकूल वस्तुगत परिस्थितियों के अतिरिक्त उन प्रतिकूल मनोगत उपादानों की भी तफसील से चर्चा की है जिनके चलते इस आंदोलन में मज़दूरों की हार की संभावनाएं अधिक थीं। फिर भी संघर्ष के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं था। मज़दूरों का बड़ा हिस्सा इस सच्चाई को समझता था। इसलिए वह आंदोलन में उतरा। प्रतिकूल स्थितियों और हार की संभावनाओं के बावजूद उसे यह लड़ाई लड़नी ही थी "ताकि मालिकों की मनचाही होने को कुछ टाला जा सके, उसकी रफ्तार कम की जा सके और आगे की लड़ाई की तैयारी के लिए समय लिया जा सके।"

"हारने के लिए लड़ना" हमारी मनोगत इच्छा का बयान नहीं, बल्कि उन ठोस स्थितियों का हमारा आकलन था। इस आकलन को पूरे आंदोलन के दौरान हमने एक चुनौती के रूप में मज़दूरों के सामने रखा। और आंदोलन खत्म होने के बाद उसका सार-संकलन करते हुए अगस्त '2002 वाले लेख में हमने उन सभी कारकों की दो टूक शब्दों में चर्चा की जिनके चलते मालिकान अपने मक़सद में कामयाब हुए।

यदि साथी सुभाष शर्मा हमारा मन्तव्य समझने में विफल रहे, तो इसके मूल कारण मज़दूर आंदोलन को लेकर **उनकी सोच में मौजूद स्वयंस्फूर्ततावादी और ट्रेडयूनियनवादी भटकावों में निहित है।** उनके पत्र में कई स्थानों पर इसकी झलक मौजूद है। मज़दूरों में स्वयंस्फूर्त ढंग से लड़ने की जो चेतना ("स्वतः प्रवर्तित मनोभाव") मौजूद रहती है, उसे वास्तविक परिस्थितियों के अहसास और राजनीतिक प्रचार एवं शिक्षा के द्वारा लगातार उन्नत करना भी नेतृत्व का काम होता है। मज़दूरों का अगुवा दस्ता मज़दूरों के "स्वतःप्रवर्तित मनोभाव" के पीछे-पीछे नहीं चलता है। वह उन्हें संघर्ष की वास्तविकता और दिशा से अवगत कराता है। यह भी एक यांत्रिक सरलीकरण है कि मज़दूर हमेशा जीतने के लक्ष्य को सामने रखकर लड़ता है। कभी-कभी वह प्रतिकूल स्थितियों में भी इसलिए लड़ता है कि मालिक उसके सामने और कोई भी रास्ता नहीं छोड़ता और उसके सामने अस्तित्व की लड़ाई खड़ी होती है। कभी-कभी वह यह जानते हुए लड़ता है कि वक्ती तौर पर उसे पीछे हटना पड़ेगा, पर वह यह भी जानता है कि लड़े बिना आगे की लड़ाइयों की तैयारी भी नहीं हो सकती।

लेख में हमने उन स्थितियों की भी चर्चा की है, जिनमें मज़दूर जीत सकते थे। **पहली,** यह कि तराई के लाखों मेहनतकशों की आबादी का कम से कम एक तिहाई हिस्सा भी उनके संघर्ष के सक्रिय समर्थन में आ खड़ा होता। कड़वी सच्चाई यह थी कि यह फिलहाल संभव नहीं था। इलाके के मज़दूरों से समर्थन मिला, लेकिन वह प्रतीकात्मक से अधिक नहीं था। **दूसरे,** जीत की संभावना तब भी हो सकती थी, जब *"होण्डा कारखाने के 253 स्थायी मज़दूरों (और अन्य अस्थायी मज़दूरों का भी) का साठ फीसदी हिस्सा अपने-अपने परिवारों सहित कारखाने को घेरकर बैठ जाता, वहीं अपनी अस्थायी बस्ती बसा लेता और पुलिस-प्रशासन की मदद से जब भी शिफ्टिंग की कोशिश की जाती तो औरतों-बच्चों सहित लेटकर रास्ता जाम कर दिया जाता तो मालिकान और प्रशासन के लिए काफी सिरदर्द पैदा किया जा सकता था और उन्हें झुकने के लिए मजबूर भी किया जा सकता था।"* यह नहीं हो सका। इसके जो कारण थे और होण्डा के मज़दूरों की जो कमियां-कमज़ोरियां थीं, उनकी हमने लेख में तफसील से चर्चा की है। यह चर्चा हमने महज गलतियां गिनाने के लिए नहीं, बल्कि आगे के उन बुनियादी कार्यभारों को रेखांकित करने के लिए की हैं, जिन्हें सम्बोधित किये बिना, होण्डा मज़दूर आगे भी अपनी लड़ाइयों को जीत की मंजिल तक नहीं पहुंचा सकते। और केवल होण्डा-मज़दूरों के लिए ही नहीं, बल्कि ये सबक आज पूरे मज़दूर आंदोलन के लिए प्रासंगिक है।

साथी सुभाष शर्मा का मानना है कि "*... रणकौशल के नाम पर श्रमिक वर्ग के बाहर की विभिन्न शक्तियों को इस्तेमाल करने पर श्रमिक आंदोलन की लगाम मालिक वर्ग, स्थापित राजनीतिक दलों व बुद्धिजीवियों के हाथ में चली जाती है।*" उनके ख्याल से मज़दूर अपने-अपने कारखानों में अपनी ट्रेड यूनियनों में संगठित होकर अपनी लड़ाई लड़ता है। नई आर्थिक-नीतियों के अमल के खिलाफ अलग-अलग कारखानों में ट्रेड यूनियनों में मज़दूर आज जो लड़ाई लड़ रहे हैं, उनके महत्व को बढ़ा-चढ़ाकर देखते हुए साथी सुभाष शर्मा उनकी कमियों की खतरनाक अनदेखी करते हैं। पहली बात यह कि मज़दूर वर्ग अपनी लड़ाई तो तभी आगे बढ़ा सकता है जब उनकी लड़ाई अलग-अलग कारखानों में बिखरी होने के बजाय एक बनने की दिशा में आगे बढ़े। यानी एक कारखाने के मज़दूर सिर्फ अपने मालिक के खिलाफ नहीं बल्कि पूरे मालिक वर्ग के विरुद्ध लड़ने की चेतना से लैस हों। इस विषय पर **लेनिन** ने विस्तार से कई जगह लिखा है। अलग-अलग कारखानों में ट्रेड यूनियनें अलग-अलग जो लड़ाइयां लड़ रही हैं, वे वर्ग-चेतना की प्रारंभिक अभिव्यक्तियां मात्र हैं। मज़दूर वर्ग जब ऐसे हकों के लिए लड़ता है, जो पूरे मालिक वर्ग और उनकी सरकार के खिलाफ केन्द्रित होती है तो उसकी लड़ाई उन्नत वर्ग-चेतना को प्रकट करती है। यह अनायास नहीं होता। स्वतःस्फूर्तता का कीर्तन गाने से नहीं होता। मज़दूरों की आर्थिक मांगों के साथ-साथ लगातार उन्हें राजनीतिक संघर्ष के लिए तैयार करना, उनके बीच लगातार क्रांतिकारी राजनीतिक प्रचार की कार्रवाई चलाना सर्वहारा वर्ग की हिरावल टुकड़ियों का काम होता है। जैसे जब आवास, स्वास्थ्य, बच्चों की शिक्षा जैसी मांगों पर या अन्य जनवादी अधिकारों पर अथवा किसी मज़दूर-विरोधी कानून के खिलाफ मज़दूर संगठित होने लगते हैं तो सभी मज़दूरों से जुड़े होने के कारण, कारखानों की घेरेबंदी तोड़कर मज़दूर वर्ग पूंजीपति वर्ग और उसकी सत्ता के खिलाफ एक राजनीतिक लड़ाई का सूत्रपात करता है। **आर्थिक संघर्ष आगे बढ़कर राजनीतिक संघर्ष नहीं बनता। यह विचार अर्थवादी भटकाव है। आर्थिक संघर्षों के साथ-साथ राजनीतिक संघर्ष की तैयारी और प्रक्रिया लगातार चलती रहती है।** यदि किसी एक कारखाने में मज़दूरों की छंटनी कर दी जाती है तो उनकी लड़ाई जीने के अधिकार की बन जाती है जो एक राजनीतिक लड़ाई है। अब यदि अन्य कारखानों के मज़दूरों की वर्ग चेतना (संघर्षों और राजनीतिक प्रचार एवं उद्वेलन की कार्रवाइयों के चलते) उन्नत है तो वे छंटनीशुदा मज़दूरों के संघर्ष को अपना संघर्ष मानकर लड़ेंगे। मज़दूरों का जुझारू से जुझारू राजनीतिक संघर्ष भी यदि एक कारखाने के भीतर ही सीमित रहता है तो वह अर्थवाद की चौहद्दियों में ही कैद रह जायेगा। दूसरी ओर, मूल मुद्दा आर्थिक हो और संघर्ष किसी एक कारखाने में सीमित न रहकर व्यापक मज़दूर आबादी में फैल जाये तो उस संघर्ष की प्रकृति भी राजनीतिक हो जायेगी।

मज़दूर आंदोलन की दिशा विषयक इस क्रांतिकारी अवस्थिति से साथी सुभाष शर्मा काफी दूर, एकदम दूसरे छोर पर खड़े प्रतीत होते हैं। वे आम मज़दूरों की "स्वतःप्रेरित भागीदारी" और कारखाना-स्तर पर मालिक-प्रशासन-स्थापित पार्टियों के गठजोड़ के विरुद्ध मज़दूरों के आज जारी आंदोलनों से काफी खुश-संतुष्ट नजर आ रहे हैं और यह भी मानते हैं कि इन्हीं के जरिये आज एक हद तक मज़दूरों की वर्ग-चेतना का भी विकास हो रहा है। **वस्तुतः यह भांति-भांति के अर्थवादों के बरक्स जुझारू अर्थवाद का ही एक नया चेहरा है।** अलग-अलग कारखानों में संघर्षों का अपना महत्व है। लेकिन कुछ सर्वहारा क्रांतिकारी अपना परम लक्ष्य यही बना बैठे हैं कि वे अर्थवादियों-सुधारवादियों व अन्य बुर्जुआओं से यूनियनों का नेतृत्व छीनकर मज़दूरों की मांगों को लेकर ज्यादा ईमानदारी से और ज्यादा जुझारू ढंग से लड़ें। उनका मानना है कि ऐसा करके वे मज़दूरों की चेतना को स्वतः उन्नत क्रांतिकारी स्तर तक उठा सकेंगे। यह एक घोर अर्थवादी सोच है।

साथी सुभाष शर्मा का मानना है कि रणकौशल के नाम पर भी मज़दूरों को अपने आंदोलन में बाहर की शक्तियों का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए, जैसा कि हम ऊपर उद्धृत कर चुके हैं। हम **लेनिन** की इस शिक्षा में विश्वास करते हैं कि मज़दूर वर्ग अपनी लड़ाई में जनता के अन्य वर्गों को जोड़कर ही सफल हो सकता है। कारखाना-विशेष के मज़दूर ज्यादा से ज्यादा मज़दूर आबादी को साथ लेने के साथ ही जनता के विभिन्न वर्गों को भी अपने साथ लेने की लगातार कोशिश करें, तभी उनकी लड़ाई वर्ग-संघर्ष के उन्नततर रूप में रूपान्तरित हो सकती है। यदि कहीं मज़दूर आंदोलन की अपनी ही बुनियाद कमजोर हो, नेतृत्व वैचारिक रूप से अधकचरा हो और उसने मज़दूर आबादी पर सही क्रांतिकारी राजनीति के प्राधिकार को स्थापित न किया हो तो ऐसा हो सकता है कि आंदोलन की लगाम सहयोग करने वाली घुटी-घुटायी मज़दूर-विरोधी ताकतों के हाथ में चली जाये। लेकिन ऐसे अनुभवों के आधार पर यह नसीहत देना **घनघोर संकीर्ण अनुभववाद** होगा कि श्रमिक आंदोलन को श्रमिक वर्ग के बाहर की शक्तियों का इस्तेमाल रणकौशल के तौर पर भी नहीं करना चाहिए।

हमारी यह स्पष्ट सोच है कि मज़दूर वर्ग को जनता के सभी वर्गों की राजनीतिक शक्तियों के साथ रणनीतिक संयुक्त मोर्चा के लक्ष्य को शुरू से ही सामने रखने के लिए और इस दिशा में लगातार कोशिश करने के लिए शिक्षित करना होगा। जहां तक रणकौशल की बात है, तो इस बारे में पहले से ही कोई आम फार्मूला नहीं दिया जा सकता, लेकिन परिस्थिति अनुसार अपने संघर्ष के पक्ष में बुर्जुआ ताकतों, बुर्जुआ न्यायालयों आदि के इस्तेमाल को भी सैद्धान्तिक तौर पर खारिज नहीं किया जा सकता।

किसी एक कारखाने में मालिकों के हमले के खिलाफ संघर्षरत मज़दूरों के साथ इलाके के अन्य कारखानों और फार्मों के मज़दूर आ खड़े हों, तभी आज की प्रतिकूल स्थितियों में भी मज़दूर जीत सकते हैं। इस सोच के तहत हमने व्यापक मज़दूर आबादी की जुझारू इलाकाई एकजुटता के लिए मज़दूरों के बीच व्यापक राजनीतिक प्रचार सघन एवं लम्बे समय तक चलाने का एक बुनियादी कार्यभार सामने रखा है। साथी सुभाष शर्मा का सवाल है कि *"तमाम श्रमिकों की इलाकाई जुझारू एकजुटता क्या सिर्फ राजनीतिक प्रचार से ही तैयार हो सकती है? इसके साथ साधारण श्रमिकों की स्वतःप्रेरित भागीदारी का मेल क्या जरूरी नहीं जो आज की परिस्थितियों में दिखता नहीं?"*

हम कतई यह नहीं कहना चाहते कि महज राजनीतिक प्रचार से इलाकाई जुझारू मज़दूर एकजुटता अस्तित्व में आ जायेगी। क्रांतिकारी राजनीति से प्रभावित जो अगुआ मज़दूर राजनीतिक प्रचार का काम चलायेंगे, उनका यह बुनियादी दायित्व बनता है कि वे जहां तक भी संभव हो, आस-पास के पूरे इलाके के हर मज़दूर आंदोलन में भागीदारी करके एक नजीर पेश करें। यदि वे किसी एक या एक से अधिक यूनियनों के नेतृत्व में प्रभावी हों तो उन यूनियनों को भी इसके लिए प्रेरित करें। मज़दूरों के जितने बड़े हिस्से पर उनका प्रभाव हो, उन्हें किसी भी कारखाने या सेक्टर के मज़दूरों के संघर्ष में सहयोग और भागीदारी के लिए तैयार करना क्रांतिकारी मज़दूर नेतृत्व के लिए अनिवार्य होगा। होण्डा यूनियन के नेतृत्व का एक हिस्सा तराई में ऐसा करता भी रहा है। इसलिए हमने इस कार्यभार को रेखांकित किया कि इलाकाई पैमाने की एकजुटता के लिए सघन एवं व्यापक राजनीतिक प्रचार का काम चलाना होगा। लेकिन साथी सुभाष शर्मा की सोच एकदम अलग है। उनका मानना है यदि आम श्रमिकों की स्वतः प्रेरित भागीदारी मौजूद न हो तो राजनीतिक प्रचार के द्वारा मज़दूरों की व्यापक एकजुटता बना पाना संभव नहीं है और आज यही स्थिति है। इसी सोच से प्रस्थान करते हुए वे इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि फिलहाल दूसरे कारखानों के श्रमिकों से लड़ाई में सहभागिता की उम्मीद किये बगैर, कारखाना-विशेष के मज़दूरों की अपनी यूनियन के नेतृत्व में लड़ाई-संचालन पर ही ध्यान दिया जाना चाहिए क्योंकि (उन्हीं के शब्दों में) *"स्वचालितता की थोड़ी सी भी जो चमक वर्तमान में दिख रही है वह कारखाना स्तर पर ही दिख रही है।"* यहां तक आते-आते साथी **सुभाष शर्मा** का अर्थवादी-ट्रेडयूनियनवादी **और** स्वयंस्फूर्तता-पूजक नजरिया एकदम नंगा हो जाता है। यानी **बकौल साथी शर्मा** के, चूंकि अभी मज़दूर "स्वयंप्रेरित" (या "स्वचालित" या स्वयंस्फूर्त) ढंग से सिर्फ अपने कारखाने में ही लड़ रहा है, अतः हमें भी कारखाना स्तर पर यूनियनों के नेतृत्व में लड़ाई संचालन से आगे की बात नहीं करनी चाहिए। जब मज़दूर "स्वयंप्रेरित" ढंग से दूसरे मज़दूरों के संघर्षों या व्यापक आम मज़दूरों के संघर्षों में भागीदारी करने लगें, तब जाकर हमें राजनीतिक प्रचार का काम हाथ में लेना चाहिए। यह है खांटी चौबीस कैरट का पुछल्लावाद और स्वयंस्फूर्तावाद। वस्तुगत परिस्थिति की आड़ लेकर यह नसीहत दी गई है कि हिरावल दस्ता वर्ग की चेतना को उन्नत करने के बजाय उसके पीछे-पीछे चले। मज़दूर स्वयं अभी सिर्फ कारखाना स्तर पर लड़ने को तैयार है, पूरे मालिक वर्ग के बजाय सिर्फ अपने मालिक से लड़ने को तैयार है, अभी मूलतः व मुख्यतः आर्थिक लड़ाई लड़ने को ही तैयार है, अतः हमें इससे आगे की बात तक नहीं करनी चाहिए। जब वे पूरे मालिक वर्ग के खिलाफ लड़ने के लिए स्वयंस्फूर्त ढंग से आगे आता दीखने लगे, तब हमें इस आशय के प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई करनी चाहिए! यानी आज हमें सिर्फ आर्थिक लड़ाई लड़नी चाहिए! मज़दूर वर्ग को राजनीतिक लड़ाई के लिए तैयार करना वक्त से पहले की अपरिपक्व कार्रवाई होगी। हमारे ख्याल से यह सोच लेनिन के बजाय मेंशेविकों की सोच के अधिक निकट है। व्यापक मज़दूर उभार या जन उभारों के विस्फोट को छोड़ दें, तो आम और व्यापक (राजनीतिक) मसलों पर संघर्ष में उतरने, अथवा अपने बिरादर मेहनतकशों की लड़ाई में सहयोग के लिए मज़दूर तभी तैयार हो सकते हैं जब उनकी नेतृत्वकारी शक्तियां उनके बीच व्यापक एवं सुदीर्घ राजनीतिक शिक्षा प्रचार एवं उद्वेलन की कार्रवाई संगठित करें। लेनिन ने बार-बार इस बात पर जोर दिया है कि मज़दूरों के

(पेज 5 पर जारी)

कण्ट्रोल्स एण्ड स्विचगियर कम्पनी का मज़दूर आन्दोलन

टूट-बिखर गया सब कुछ! आखिर क्यों?

(बिगुल संवाददाता)

नोएडा (गौतमबुद्धनगर)। कण्ट्रोल्स एण्ड स्विचगियर कम्पनी (ए-7 व 8, सेक्टर-8) के मज़दूर आंदोलन की कमजोरी को भांपते हुए मैनेजमेण्ट ने और अधिक हमलावर तेवर अख्तियार कर लिया है। लगभग चार माह से निलम्बित 31 मज़दूरों को मैनेजमेण्ट ने नवम्बर के पहले हफ्ते में बर्खास्त कर दिया है। बर्खास्त ये सभी मज़दूर या तो यूनियन के पदाधिकारी हैं या अपने वाजिब हकों के लिए लड़ने वाले जुझारू मज़दूर।

मालूम हो कि लगभग चार माह पूर्व कण्ट्रोल्स ग्रुप की चार कम्पनियों के मज़दूरों ने अपनी यूनियनों के फेडरेशन के बैनर तले संयुक्त रूप से संघर्ष की शुरूआत की थी। चारों कम्पनियों के मज़दूरों की एक प्रमुख मांग थी त्रिवर्षीय समझौते को लागू करना। साथ ही अन्य मांगें भी एक समान थी। इसलिए मज़दूरों ने एक अच्छी पहलकदमी लेते हुए संयुक्त संघर्ष की शुरुआत की थी। पहली बड़ी संयुक्त कार्रवाई के रूप में एक दिन की सांकेतिक हड़ताल और जुलूस निकालकर मज़दूरों ने सिटी मजिस्ट्रेट को ज्ञापन दिया और मांगें पूरी न होने पर आर पार की लड़ाई की चेतावनी दी।

मज़दूरों की इस कार्रवाई से कम्पनी मैनेजमेण्ट के कान पर जूं तक नहीं रेंगी। एक तरफ उसने द्विपक्षीय-त्रिपक्षीय वार्ताओं के नाटक का नया सिलसिला शुरू कर मज़दूरों को उलझाये रखा, दूसरी तरफ वह मज़दूरों पर हमले की तैयारियों में जुट गया।

आखिरकार जब मज़दूरों के सामने यह बिलकुल उजागर हो गया कि मैनेजमेण्ट जिला प्रशासन और श्रम विभाग की मदद से मामले को सिर्फ लटकाये रखने के लिए वार्ताओं का नाटक कर रहा है तो उन्होंने अपने फेडरेशन की अगुवाई में आर-पार की लड़ाई की शुरूआत कर दी। चारों कम्पनियों में एक साथ टूल डाउन के जरिये संघर्ष शुरू हुआ। लेकिन मुश्किल से डेढ़ दिन बाद नोएडा फेज-II स्थित कम्पनी के नेताओं ने टूल डाउन खत्म कराकर काम शुरू करवा दिया। जाहिर है मैनेजमेण्ट मज़दूरों की एकता को तोड़ने में कामयाब हो गया। इसके बाद मैनेजमेण्ट ने निलम्बन की कार्रवाई शुरू की। संघर्ष अभी परवान भी नहीं चढ़ पाया था कि मैनेजमेण्ट के हमलावर तेवर और नेताओं के एक हिस्से के विश्वासघात के बाद अचानक सब कुछ टूट-बिखर गया। निलम्बित मज़दूरों को छोड़कर धीरे-धीरे बाकी कम्पनियों के मज़दूर भी काम पर वापस लौट गए।

शुरूआत में ही मिले इस धक्के के बाद आंदोलन दुबारा खड़ा नहीं हो सका। नेतृत्व के एक हिस्से के विश्वासघात के बाद आम मज़दूर मायूस हो गये और बाकी बचा नेतृत्व भी ऐसा कुछ नहीं कर सका। जिससे नये सिरे से भरोसा पैदा हो सके और संघर्ष नये सिरे से खड़ा हो सके। निलम्बित मजदूर गेट के सामने धरने पर बैठे रहे और नेता सिर्फ चुनावी पार्टियों के नेताओं, अफसरों और मैनेजमेण्ट के दरवाजे खटखटाते रहे। इस कवायद का तो न कोई नतीजा निकलना था और न ही निकला। धीरे-धीरे मज़दूरों में हताशा-निराशा घर करने लगी। इसी हालत में मैनेजमेण्ट में नया हमला बोलकर निलम्बित मज़दूरों को बर्खास्त कर दिया।

कण्ट्रोल्स ग्रुप के मज़दूरों का जुझारू संघर्षों का इतिहास रहा है। अतीत में अपने एकजुट जुझारू संघर्ष के जरिये मज़दूरों ने मालिकान को झुकने और मांगें मानने पर बाध्य किया था। लेकिन इस बार की लड़ाई में मालिकान की जीत हुई है। मज़दूरों की हार हुई है। यह आज का एक कड़ुवा सच है। नेतृत्व के एक हिस्से के विश्वासघात के बाद बाकी नेतृत्व की ईमानदारी और मज़दूरों की जुझारू संघर्ष क्षमता पर कोई सवाल न उठाते हुए आज इस हार के कारणों को समझना सभी मज़दूरों के लिए जरूरी है। मज़दूरों को अपने किसी संघर्ष में मिली हार सिर्फ यह बताती है कि उनकी तैयारियों में, संघर्ष की रणनीति और रणकौशल में कमियां थी जिनकी अच्छी तरह पड़ताल करके ही नये सिरे से संघर्षों की शुरूआत की जा सकती है और हार को जीत में बदला जा सकता है। इसलिए इस हार से निराश होकर संघर्ष के रास्ते से हमेशा के लिए मुंह मोड़ लेना अपने वजूद को ही मिटा देना होगा। इसलिए हमारे सामने रास्ता यही है कि बेलाग-लपेट ढंग से इस हार के कारणों को समझा जाये और जरूरी सबक निकाले जायें।

कठिन समय की मार

कण्ट्रोल्स ग्रुप के इस मज़दूर आंदोलन की हार के पीछे नेतृत्व के एक हिस्से का विश्वासघात एक अहम कारण रहा है लेकिन इससे भी अहम कारण दूसरे रहे हैं जिन पर सोचना आज ज्यादा जरूरी है। इस कम्पनी के मज़दूरों ने अपने जुझारू संघर्ष के जरिये जब पिछली लड़ाइयां जीती थीं तब से हालात बिल्कुल बदल चुके हैं। पिछले

दस -बारह वर्षों में देश के भीतर भूमण्डलीकरण के नाम पर मज़दूर विरोधी एक नया हमलावर दौर शुरू हुआ है। वह समय बीत चुका जब अलग-अलग कारखानों में अपने एकजुट संघर्ष के दम पर मज़दूर मालिकान को टक्कर देकर अपनी मांगें मनवा लेते थे। आज देश स्तर पर ही नहीं पूरी दुनिया के स्तर पर मुनाफाखोरों की एक अभूतपूर्व एकजुटता कायम हो चुकी है। सरकारें ही नहीं श्रम विभाग और न्यायपालिका तक निर्लज्जता के साथ पूंजीपतियों के हमजोली बनकर मज़दूर वर्ग पर पिल पड़े हैं। देश के केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के नेतृत्व की गद्दारियों और राजनीतिक संघर्ष को दरकिनार कर सिर्फ दुअन्नी-चवन्नी की आर्थिक लड़ाइयों ने देशव्यापी मज़दूर आंदोलन को इतना नखदन्तहीन बना दिया है कि पंजीपतियों और सरकार के हौसले बुलन्द हैं। श्रम कानूनों में बदलाव पर पूंजीपतियों के हाथ खुले कर देने की तैयारियां पूरी हो चुकी हैं। इस कठिन समय में कण्ट्रोल्स ग्रुप के नेतृत्व ने जिन पुराने तरीकों से नये दौर की लड़ाई लड़ी वह मालिकान को झुकाने के लिए बेहद नाकाफी थी।

आज हालत यह है कि किसी एक कारखाने के स्तर की छोटी से छोटी लड़ाई भी सीधे-सीधे पूंजी की समूची सत्ता के खिलाफ मज़दूर वर्ग की व्यापक लड़ाई का अंग बन चुकी है। ऐसे में सिर्फ कारखाना केन्द्रित संघर्ष की रणनीति से मज़दूरों को सिवाय निराशा के और कुछ हासिल नहीं होगा। कण्ट्रोल्स ग्रुप के ताजा मज़दूर आंदोलन की हार का सबसे अहम कारण बदले हुए इस कठिन समय के अनुसार संघर्ष की रणनीति न तैयार करना रहा है।

संघर्ष की नयी रणनीति की जरूरत

साफ है कि बदले हुए समय में अगर किसी कारखाने के स्तर पर भी छोटी-मोटी लड़ाई लड़नी है तो नेतृत्व को आज के समय की कठिनाइयों-चुनौतियों के बारे में आम मज़दूरों को बेलाग-लपेट ढंग से बताना होगा जिससे वे कठिन संघर्ष की मानसिकता से संघर्ष में कूदें। यह बताना-समझाना होगा कि उन्हें सिर्फ अपने कारखाने के मालिकान से ही नहीं बल्कि समूचे पूंजीपति वर्ग और उसकी मददगार सरकार और प्रशासन की समूची ताकत से एक साथ जूझना होगा। तभी आम मज़दूरों को यह बात अच्छी तरह समझ में आ सकती है कि क्यों उन्हें अपने आंदोलन को कारखाने की चौहद्दी से बाहर निकाल कर अपने इलाके की व्यापक मज़दूर आबादी के पास ले जाना होगा और एक व्यापक इलाकाई पैमाने की एकजुटता कायम करते हुए पूंजी की समूची सत्ता के खिलाफ फैसलाकुन देशव्यापी क्रान्तिकारी मज़दूर आंदोलन की दिशा में बढ़ना होगा। आज के देशव्यापी मज़दूर आंदोलन की स्थिति को देखते हुए यह रास्ता चाहे जितना कठिन लगे, लेकिन सच्चाई यही है कि दूसरा कोई रास्ता भी नहीं है।

चुनावी पार्टियों की आस छोड़ो, अपनी एकजुट ताकत पर भरोसा करो

कण्ट्रोल्स ग्रुप के साथियों ने अपने संघर्ष में मदद करने के लिए तमाम चुनावी पार्टियों के नेताओं के दरवाजों पर दस्तक दी लेकिन उनके अनुभव ने खुद ही उन्हें सिखा दिया है कि उन्हें थोथे आश्वासनों से अधिक कुछ नहीं मिलने वाला। कारण साफ है कि ये सभी पार्टियां देशी-विदेशी पूंजीपतियों की हितैषी हैं। तभी वे संसद-विधानसभाओं में बैठकर पूंजीपतियों की खुली लूट की नीतियों पर मुहर लगा रही हैं। इन पार्टियों से जुड़ी तमाम ट्रेड यूनियनें भी मालिकों की दलाल हैं और मज़दूर इनके लिए वोट बैंक से अधिक कुछ नहीं हैं। इसलिए मज़दूरों को इनसे पिण्ड छुड़ाना होगा और सिर्फ अपनी एकता और मज़दूर वर्ग की ऐतिहासिक ताकत पर ही भरोसा करना होगा।

अपनी एकता की ताकत पर भरोसा करने के बजाय "राष्ट्रीय" पार्टियों के "बड़े" नेताओं और केन्द्रीय यूनियनों व फेडरेशनों पर निर्भरता ने पिछले दिनों मारुति उद्योग के आंदोलन, शाही एक्सपोर्ट, फ्लेक्स व फीनिक्स के आंदोलनों को मालिकों की झोली में डाल दिया। चुनावी नेताओं का चक्कर लगाने के बजाय कण्ट्रोल्स ग्रुप के नेतृत्व ने भी अपने संघर्ष में अगर व्यापक मज़दूर एकजुटता कायम करने की दिशा में ठोस प्रयास किया होता, नोएडा की मज़दूर आबादी के बीच व्यापक प्रचार-प्रसार और व्यापक गोलबंदी का प्रयास किया होता तो आंदोलन इस दुर्भाग्यपूर्ण हश्र पर पहुंचने से बच भी सकता था। अगर कामयाबी नहीं भी मिलती तो भी यह आंदोलन कम से कम एक उदाहरण तो बन ही सकता था।

कण्ट्रोल्स ग्रुप के इस आंदोलन के दौरान "बिगुल" के साथी विभिन्न जनरल मीटिंगों में और नेतृत्व से व्यक्तिगत एवं सामूहिक ढंग से मिलकर लगातार उपर्युक्त बातें रखते रहे हैं। लेकिन नेतृत्व का अधिकांश हिस्सा इन बातों पर ठोस ढंग से सोचने और अमल के लिए तैयार नहीं था। बहरहाल, हो सकता है कि मौजूदा संघर्ष का अनुभव इन बातों पर सोचने-समझने के लिए मजबूर करे। नेतृत्व ही नहीं आम मज़दूरों को भी इन सवालों पर सोचना होगा, अपनी पहलकदमी खुद बढ़ानी होगी और एक व्यापक क्रांतिकारी मज़दूर आंदोलन संगठित करने की जिम्मेदारियां सम्भालने के लिए आगे बढ़ना होगा। इस संघर्ष की हार से निराश होकर चुपचाप पूंजी की गुलामी सहने की मानसिकता से उबरकर नये सिरे से उठ खड़े होने की तैयारी करनी होगी।

(पेज 4 से आगे)

होण्डा मज़दूर आन्दोलन- एक बहस

बीच रोजमर्रे के आर्थिक कार्यों के साथ-साथ राजनीतिक कार्य (प्रचार, शिक्षा एवं उद्वेलन के जरिए राजनीतिक संघर्ष के लिए मज़दूर वर्ग की तैयारी का काम) भी पहले दिन से ही शुरू कर देना होता है।

साथी सुभाष शर्मा का कहना है : *"प्रचार तो लगातार घनीभूत रूप से सिर्फ इलाकाई ही क्यों, पूरे देश में संगठित करने का कर्तव्य है।" यह क्रांतिकारी संगठनों की तात्कालिक जरूरत बन चुकी है- यह बात निस्सन्देह सत्य है। परंतु यह "मज़दूर आबादी की व्यापक इलाकाई एकजुटता" के लक्ष्य में नहीं वरन अगुआ साथियों की एकजुटता "के लक्ष्य में होना चाहिए।"* इस स्थापना से साथी सुभाष शर्मा की "मार्क्सवादी" सोच का समूचा मानचित्र सामने आ जाता है।

उनके लिए राजनीतिक कार्य का सिर्फ एक मतलब है और यह है मज़दूर वर्ग के अगुआ दस्तों (या यूं कहें कि कम्युनिस्ट क्रांतिकारी ग्रुपों) की देशव्यापी एकता की दिशा में प्रयास! और जहां तक मज़दूर वर्ग के बीच ठोस जमीनी काम का ताल्लुक है, तो वह सिर्फ यह है कि *"यूनियन की लड़ाई संचालन का कर्तव्य"* निभाया जाये क्योंकि *"स्वचालितता की थोड़ी से भी जो चमक वर्तमान में दिख रही है वह कारखाना स्तर पर ही दीख रही है।"* साथी सुभाष शर्मा यहां बुरी तरह से 'कन्फ्यूज्ड' हैं तथा कई सामान्य और विशिष्ट कार्यभारों की खिचड़ी पकाये डाल रहे हैं।

मज़दूर वर्ग की व्यापक एकजुटता उनके हिसाब से देश स्तर पर हरावल शक्तियों की एकता के रूप में ही फलीभूत होती है। तब तो आम मज़दूरों के बीच राजनीतिक शिक्षा, प्रचार और उद्वेलन की जिस कार्रवाई को लेनिन ने एकदम शुरू से आर्थिक एवं रोजमर्रे के संघर्षों के साथ-साथ लगातार चलाने पर बल दिया था, उसका कोई मतलब ही नहीं रह जाता! क्रांतिकारी संगठनों के बीच जो 'पॉलिमिक्स' व एकता वार्ताएं होंगी, बस उन्हीं से काम हो जायेगा! और यह 'पॉलिमिक्स' जिस अनुभव के आधार पर होगी वह सिर्फ कारखानों में ट्रेड यूनियन संघर्षों का अनुभव होगा, क्योंकि साथी सुभाष शर्मा के ख्याल से हम आज इससे आगे जा ही नहीं सकते! साथी सुभाष शर्मा का ख्याल है कि अलग-अलग कारखानों में चल रहे जुझारू ट्रेड यूनियन संघर्षों के बीच जो नये अगुआ मज़दूर साथी सामने आयेंगे, वही आने वाले दिनों में देश भर में श्रमिक वर्ग की एकजुटता को वास्तविक रूप दे सकते हैं। हमारी यह दृढ़ धारणा है कि **यदि जुझारू से जुझारू मज़दूर साथी सिर्फ अपने कारखाना स्तर पर मज़दूरों की मांगों को लेकर लड़ता रहेगा और उसे व्यापक मज़दूर वर्ग की लड़ाई और ऐतिहासिक मिशन की शिक्षा नहीं मिलेगी तथा कदम-ब-कदम इसके अमली प्रशिक्षण की प्रक्रिया से नहीं गुजारा जायेगा, तो कालांतर में वह अर्थवाद के दलदल में गले तक धंसा हुआ एक ट्रेड यूनियन नौकरशाह ही बन सकेगा।** इसके अतिरिक्त वह कुछ भी और नहीं बन सकता। देशव्यापी स्तर पर सर्वहारा वर्ग की क्रांतिकारी राजनीतिक शक्तियों की एकजुटता का सवाल एक दीगर सवाल है। मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार, शिक्षा और उद्वेलन की कार्रवाई हर क्रांतिकारी संगठन कारखाना स्तर या ट्रेड यूनियन स्तर के आर्थिक कार्रवाईयों के साथ शुरू से ही लगातार चलाता है। यही चीज उसे तमाम संशोधनवादी-अर्थवादी संगठनों से व्यवहार में अलग करती है। इसी व्यावहारिक राजनीतिक कार्य के एक अंग के तौर पर, हम किसी एक औद्योगिक क्षेत्र के अलग-अलग कारखानों के मज़दूरों को अमली तौर पर यह अहसास कराने की कोशिश करते हैं कि यदि वे एक-दूसरे की लड़ाइयों में एक साथ मिलकर खड़े हों तो उनकी एकजुट शक्ति के बूते हर लड़ाई को जीता जा सकता है। व्यवहार में पूरे देश के मज़दूरों को यह बात एक साथ नहीं बताई जा सकती। उन्हें आम नारे के तौर पर यह देशव्यापी और विश्वव्यापी मज़दूर एकता की शिक्षा लगातार दी जाती है, लेकिन जब हम इलाका विशेष के मज़दूरों से एक-दूसरे की लड़ाई में सक्रिय भागीदारी की बात कह रहे हैं तो यह कोई आम नारा नहीं बल्कि खास, ठोस, अमली नारा है। यह 'प्रोपेगैण्डा' का नारा नहीं है, बल्कि 'एजिटेशन' और 'ऐक्शन' का नारा है। व्यवहार में, लड़ते हुए, जो मज़दूर इलाकाई एकजुटता की ताकत को महसूस करेंगे; देशव्यापी स्तर पर मज़दूर एकता के महत्व को मज़दूर वर्ग के ऐतिहासिक मिशन को और सर्वहारा अंतरराष्ट्रीयतावाद को वे ही मज़दूर आगे चलकर सही ढंग से और आसानी से प्राधिकार के रूप में स्वीकार कर सकेंगे।

साथी सुभाष शर्मा की स्थापनाएं व धारणाएं बुनियादी तौर पर मेंशेविकों और संशोधनवादियों की अवस्थिति के करीब पड़ती हैं। यह देखना चिंताजनक लगता है कि क्रांतिकारी पांतों में अर्थवाद, स्वयंस्फूर्ततावाद और विसर्जनवाद की प्रवृत्तियां कितने नये-नये रूपों में सिर उठा रही हैं!

क्रांतिकारी अभिवादन के साथ

बिगुल प्रतिनिधि, रुद्रपुर

(पेज 1 से आगे)

मौजूदा पूंजीवादी निजाम को उखाड़ फेंककर ही ...

आयी हैं, उन पर सम्बन्धित राज्य सरकारों का जो रवैया सामने आया है और विपक्षी पार्टियां जिस तरह इस मानवीय त्रासदी पर भी सियासी खेल खेल रही हैं, वह गुरशरण सिंह के नाटक के इस दृश्य से भी ज्यादा घिनौना और गंदा है।

राजस्थान के दक्षिण-पूर्व स्थित बरान जिले के आदिवासी बहुल गांवों में सहरिया जनजाति के बीस लोगों की भुखमरी से मौत हो गयी है। कई गैर सरकारी रिपोर्टों ने इसकी पुष्टि की है। लेकिन मुख्यमंत्री अशोक गहलोत इसे मानने के लिए तैयार नहीं हैं। उनके दावे के अनुसार बात यह सामने आती है कि इन मौतों की जिम्मेदार आदिवासियों की खास तरह की भोजन करने की आदतें हैं। उनके अनुसार अपनी भूख मिटाने के लिए आदिवासियों ने चींटिया इसलिए खायीं क्योंकि यह उनका पसन्दीदा भोजन है। इसी तरह घास की रोटियां भी वे चाव से खाते हैं। इन मौतों के लिए खुद आदिवासियों की जीवनशैली ही जिम्मेदार है-यह साबित करने के लिए अशोक गहलोत ने यहां तक कहा कि बीमार पड़ने पर आधुनिक दवाइयों का सेवन करने के बजाय वे मरना पसंद करते हैं।

राजस्थान के कुछ इलाके पिछले तीन सालों से गंभीर सूखे की चपेट में हैं। लेकिन इससे निपटने के नाम पर सिर्फ सियासी नुमाइश होती रही है और अफ़सरशाही राहत सामग्री की बंदरबांट में लगी रही है। मुख्यमंत्री अशोक गहलोत केंद्र सरकार पर पर्याप्त राहत राशि और खाद्यान्न न देने का आरोप लगाकर अपनी सरकार का दामन बचाने की कोशिश करते नजर आते हैं तो दूसरी तरफ केन्द्र सरकार उलटकर तोहमत लगाती है कि राज्य सरकार अन्तपूर्णा अन्न योजना और अन्त्योदय अन्न योजना के तहत जारी किये गये खाद्यान्न को ही पूरा उठा नहीं सकी है। ऐसे में मुख्यमंत्री द्वारा और अधिक खाद्यान्न की मांग करने की बात बेतुकी है।

साफ जाहिर है कि अकाल और भुखमरी से गंभीरता से निपटने के बजाय सियासी दांव खेले जा रहे हैं। भुखमरी से ये मौतें ऐसे समय में हो रही हैं जबकि भारतीय खाद्य निगम के गोदामों में अनाज सड़ रहा है। देश में सूखे या अन्य प्राकृतिक आपदाओं से निपटने के लिए खाद्यान्न सुरक्षा भण्डार (बफर स्टॉक) कुल 17 मीट्रिक टन चाहिए जबकि खाद्य के गोदामों में 50 मीट्रिक टन अनाज अटा पड़ा है, फिर भी ये जरूरतमंदों तक नहीं पहुंच पा रहा है और लोग भुखमरी के शिकार हैं।

देश में सार्वजनिक वितरण प्रणाली की जो दशा है वह किसी से छुपी नहीं है। राशन की सामग्री गरीबों-जरूरतमन्दों को मिले, यह सुनिश्चित कराने के लिए सरकार ने **गरीबी रेखा से नीचे (बीपीएल) और गरीबी रेखा से ऊपर (एपीएल)** वालों के लिए अलग-अलग राशन कार्ड बनवाये थे। लेकिन भुखमरी वाले इलाकों से जो रिपोर्टें आयी हैं वे इसकी पोल भी खोल देती हैं। कई गांवों में गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों को चिन्हित कर राशन कार्ड बने ही नहीं थे और कई जगह तो गांव के ताकतवर लोग कोटेदार से मिलीभगत कर राशन खुद हड़प चुके थे। राजनीतिक-प्रशासन तंत्र की संवेदनहीनता और भ्रष्टाचार के साथ सामाजिक व्यवस्था की संवेदनहीनता ने मिलकर हालात ऐसे बना दिये हैं जहां खाद्यान्नों की प्रचुरता और भुखमरी एक साथ मौजूद है।

कालाहाण्डी का सच

उड़ीसा के कालाहाण्डी समेत राज्य के अन्य पश्चिमी जिलों में भूख से हुई मौतों की सरकारी जांच रिपोर्ट ने भी नवीन पटनायक की गठबंधन सरकार के नकारेपन और स्थानीय प्रशासन की संवेदनहीनता पर बेहयाई से पर्दा डालने का काम किया है।

रिपोर्ट में उड़ीसा सरकार को सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार करने की सलाह देते हुए कहा गया है कि त्रिवेणी पडिका (गुजकापल्ली ग्राम) की मौत मलेरिया से हुई है। इसी तरह के ऊंझर जिले के कुलादेश गांव के दो बच्चों की मौत का कारण भुखमरी नहीं कुछ और बताया है। ये कारण क्या थे, जांच रिपोर्ट में इसका कुछ अता-पता नहीं है। रिपोर्ट का कहना है कि मृतकों को 26 किलो अनाज मिला था जिसमें 16 किलो अन्नपूर्णा योजना के तहत जुलाई कोटे का और 10 किलो अनाज अगस्त कोटे का। यहां गौर करने लायक बात है कि ये मौतें अगस्त महीने में हुईं, और जो परिवार अगस्त महीने में जुलाई का राशन प्राप्त करेगा तो क्या जुलाई महीने में हवा-पानी पीकर जियेगा। सार्वजनिक वितरण प्रणाली से जुड़ी जिन खामियों की चर्चा रिपोर्ट में है उड़ीसा ही नहीं पूरे देश के पैमाने पर जनता उसे भुगत रही है। जांच रिपोर्ट में आदिवासियों के राशन कार्ड बिचौलियों के पास गिरवी रखे जाने का तथ्य भी प्रकाश में आया है।

दूसरी तरफ, जो रिपोर्ट में कहीं दर्ज नहीं है, वह यह कि ऐसी भयावह आपदाओं में किस क्रूरता के साथ समाज के लुटेरे गिद्ध, सियार और भेड़िये स्त्रियों को नोंचते और लूटते हैं। इस भूख और बेकारी के दावानल में काला हांडी के जिला मुख्यालय भवानी पटना से लगभग 15 किलोमीटर दूरी पर स्थित गोईपीटा गांव की युवतियां ठेकेदारों की हवस की तराजू पर अपनी देह का सौदा कर अपना पेट भरती हैं। भवानी पटना गांव की लुचना का कहना है कि पैसा कमाना हमारे लिए बहुत कठिन काम है। दिन भर काम के बदले ठेकेदार हमें 35 रु. पकड़ा देता है, जबकि साथ सोने पर 100/- रु. मिल जाता है। गांव के विदुर नायक कहते हैं कि दिन भर काम के बाद शरीर देना मतलब 65 रु. जबकि मुर्गा-गोश्त इससे मंहगा है। यानी, औरत का गोश्त इससे सस्ता हुआ। गांव की युवतियों की विवशता है कि अगर ना करें तो काम से हाथ धो बैठें। लिहाजा भूख से बिलबिलाता यह समाज तीन दिन की कमाई एक दिन में करने को मजबूर है।

संसद में कालाहांडी पर चर्चा होती है तो भुखमरी की समस्या पर कुछ इलाकाई सांसद यह कह कर चर्चा से इनकार कर देते हैं कि यह हमारे स्वाभिमान पर चोट तथा राज्य को बदनाम करने की कोशिश है। जनता के हकों को लूटने वाले ये बूटमार बदनामी और स्वाभिमान का रोना रोते हैं। क्या इन ठगों और लुटेरों का भी स्वाभिमान होता है जो राज्य को अपनी बपौती समझते हैं। पिछले वर्ष इन्हें शर्म नहीं आयी जब काशीपुर ब्लाक में 25 आदिवासियों की 'आमटका' (आम की गुठली) खाने से मौत हुई। तब इन्हें शर्म नहीं आयी जब बीपीएल (गरीबी रेखा के नीचे) कोटे के 12.36 लाख टन चावल में राज्य सरकार सिर्फ 36 हजार टन ही उठा पायी। बाकी अनाज गोदामों में पड़ा रहा। इसी तरह 1.67 लाख टन अनाज का आवंटन किया गया जिसमें सिर्फ 12 हजार टन ही उठाया गया।

मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में हुई मौतें

मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में भी भुखमरी से हुई मौतों पर सरकार बेहयाई से पर्दा डालने की ही कोशिश कर रही हैं। मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल से लगभग 90 किमी दूरी पर स्थित विदिशा जिले के आदिवासी बहुल गांवों-नहरिया खजूरी, लहाद्रा और लमान्या में पिछले 22 अक्टूबर से अब तक 22 मौतें हो चुकी हैं। इनमें एक दर्जन बच्चे हैं। इस पर राज्य सरकार का रवैया देखिए कि इन मौतों का कारण भुखमरी बताना तो दूर वह इन्हें स्वाभाविक मौतें मानती है।

इसी तरह महाराष्ट्र के ठाणे जिले में 26 आदिवासी बच्चों की कुपोषण से हुई मौत से सरकार पूरी तरह इनकार कर रही है और मौतों का कारण बीमारी बता रही है। यहां तक कि राज्य के एक सीनियर आई.ए.एस. अफ़सर अरुण भाटिया, जो 'ट्राइबल रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट' के अध्यक्ष भी हैं, सरकार के दावे के खिलाफ खुलकर बोल रहे हैं। लेकिन सरकार भुखमरी पर पर्दा डालने की बेहया कोशिश में लगी हुई है।

इस भयावह मानव त्रासदी पर सरकारों का जो रवैया है, उसे राजनीति में आये 'नैतिक पतन' या सिर्फ अफ़सरशाही के भ्रष्टाचार व संवेदनहीनता के मत्थे मढ़कर संवेदनशील जमात छुटकारा नहीं पा सकती। यह अकाल और भुखमरी मानवनिर्मित है; यह उड़ीसा की सरकारी रिपोर्ट से भी जाहिर है। जब तक यह मुनाफाखोर मानवद्रोही व्यवस्था कायम रहेगी अकाल और भुखमरी की समस्या से प्रचुरता के बीच भुखमरी की इस त्रासदी से बचा नहीं जा सकता। इस सच्चाई को समझने के लिए क्या इस 'लोकतांत्रिक' व्यवस्था के 56 सालों का अनुभव काफी नहीं? जब तक एक ऐसे समाज का निर्माण नहीं हो जाता जिसमें उत्पादन या सभी सामाजिक सम्पदा बाजार और मुनाफे की ताकतों के चंगुल में नहीं बल्कि समाज की जरूरतों को पूरा करने के लिए होगी, तब तक इन तबाहियों को रोकना नामुमकिन है। मौजूदा पूंजीवादी निज़ाम को उखाड़ फेंककर ही ऐसे समाज की दिशा में बढ़ा जा सकता है। समाज के तमाम संवेदनशील लोगों को इस दिशा में बढ़ने के लिए आगे आना ही होगा।

आपस की बात

समूह में ताकत है, लेकिन सोच बदलनी होगी

बात है मेरे कारखाने (होण्डा पावर प्रो.लि., रुद्रपुर, उत्तरांचल) की। हमारे कारखाने से एक श्रमिक नेता की अवैध सेवा समाप्ति कर दी गयी थी। यूनियन के आदेश पर 18 अक्टूबर से कारखाने में भूखों रहकर काम करने का निर्णय लिया गया। सभी शिफ्ट के लोग भूखे रहते हुए कारखाने में ही रुके रहे। बेरहम और हृदयहीन प्रबंधकों पर इसका कोई फर्क नहीं पड़ रहा था। ऐसे में लोगों में आक्रोश बढ़ता गया। तीसरे दिन शाम से ही कुछ प्रबंधकों-अधिकारियों को हमने कारखाने में ही बन्धक बना लिया था। शेष को अगले दिन सुबह से उनका भी डेढ़ दिनों तक खाना बन्द कर दिया गया था। काम के दौरान विभागाध्यक्षों/अधिकारियों ने मजदूरों को जितना परेशान किया था, इस दौरान मजदूरों ने अपना बदला खूब निकाला। यही नहीं, प्रबन्धन के जो लोग दूसरे दिन काम पर आये उनका टिफिन गेट के बाहर धरना दे रही महिलाओं ने रखवा लिया और बच्चों को खिला दिया।

एक हाल में प्रबन्धन-स्टाफ के लोग कैद थे। बाहर भूख हड़ताली श्रमिक थे। पहले श्रमिकों ने हूटिंग शुरू की, फिर उनको श्रमिकों द्वारा रखे गये तरह-तरह के उपनामों से पुकारा जाता रहा। अधिकारी जितना ज्यादा हमें प्रताड़ित करते रहे हैं, उनकी उतनी ज्यादा खिंचाई हुई। एक मजदूर साथी को एल्युमिनियम शाप की शिफ्टिंग के बाद दूसरे विभाग में समायोजित किया गया था। उस विभाग के प्रमुख ने उसे मानसिक तौर पर काफी प्रताड़ित किया था। उसने उसी अंदाज में लगभग डेढ़ घंटे तक नकल उतार कर एकांकी नाटक प्रस्तुत कर दिया। साथियों की रचनात्मकता एकदम से खुल गयी थी। ऐसा लग रहा थां जैसे मजदूरों का अपना समाजवाद आ गया है। प्रबन्धकों के चहरे पर गुस्सा व दहशत देखने लायक था। हम भूखे प्यासे भी प्रसन्न थे जबकि प्रबंधक वर्ग चिन्ताकुल था उनकी हेंकड़ी गायब थी। कई तो लैट्रिन-पेशाब के लिये भी बाहर नहीं निकले। कुछ ने तो शौच आदि के लिये डस्टबिन व पन्नियों का सहारा लिया। दूसरे दिन रात में जब यूनियन के आदेश से उन्हें छोड़ा गया तो उन्हें बाहर महिलाओं ने घेर लिया। इसके बाद वे ऐसा भागे जैसे वे मौत के मुंह से निकल कर आये हों।

मेरी जिन्दगी का यह अनोखा अनुभव था। सामूहिकता में ऐसी ताकत होती है कि असंभव भी संभव होने लगता है। भारी संख्या में पुलिस पी.ए.सी. के बावजूद प्रशासन उन्हें छुड़ा नहीं पायी थी। कल तक आदेश देने वाले आज समूह के सामने दयनीय बने हुये थे। प्रशासन भी पूरी तरह से हिला हुआ था। पर हमारे समूह में ही कुछ ऐसी कमजोरियां थीं कि कारखाने के भीतर छह दिनों तक सामूहिक भूख हड़ताल के बावजूद प्रबन्धन को हम झुका नहीं सके। वह तालाबंदी करके फरार हो गया। लेकिन इस अनोखे आंदोलन से सीखने को बहुत कुछ मिला।

इस आंदोलन से एक बार फिर यह प्रमाणित हुआ कि, आज लड़ाई कितनी कठिन हो चुकी है। उस पर हमारे बीच की भितरघात हमें ज्यादा कमजोर और प्रबन्धकों को ज्यादा मजबूत बना देती है। एक और बात यह है कि हमारे बहुत से साथी यह चाहते हैं कि हमें कोई नुकसान भी न हो और हमें सब कुछ मिलता रहे। यह जानते हुए भी कि तमाम लड़ाइयों-कुर्बानियों के बाद ही हमें आज थोड़ा बेहतर वेतन मिल रहा है, फिर भी एक दिन का वेतन/भत्ता कटने पर वे चिंचियाने लगते हैं। इस सोच को बदलना बेहद जरूरी है।

हम आज भी गुलाम

जब गांव से आप नोएडा जैसे औद्योगिक शहर में प्रस्थान करेंगे तो यहां की सड़कें और बड़े-बड़े सुन्दर मकान आपको जरूर आकर्षित करेंगे। करना भी चाहिए, क्योंकि कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो सुंदर चीजों को देखकर खुश न हो। किन्तु इन्हीं भव्य इमारतों के बीच आपको झुग्गी-झोपड़ियां भी दिखायी देंगी, जहां मजदूर रसातल की जिंदगी जी रहे हैं। नोएडा आने के बाद इस रसातल की जिन्दगी से पहली बार मेरा आमना-सामना हुआ।

नोएडा के ए ब्लाक में (सेक्टर : 57) हम और हमारे एक दोस्त काम की तलाश में गये। एक फैक्ट्री के गेटमैन से पूछा गया कि क्या काम मिल सकता है? काम वहां के ठेकेदार के अधीन होता है। काम के लिए हमें ठेकेदार एक दूसरी फैक्ट्री में ले गया। वह फैक्ट्री भी उसी मालिक की थी किन्तु वह सी-ब्लाक में थी। ठेकेदार तुरन्त अंदर ले गया और एक दूसरे मज़दूर से बोला कि इन लड़कों को काम पर लगाओ और वह तुरन्त अपने साथ काम की जगह ले गया किन्तु हम लोगों की अभी चिंता थी कि कितने घंटे काम करना पड़ेगा? और ठेकेदार कितना पैसा देगा? लेकिन इसकी जगह उसे अपने काम की चिंता थी।

बहरहाल, हमें तो अपने अस्तित्व की चिंता थी। इसलिए काम पर लग गये। काम शुरू किए अभी एक ही हफ्ता हुआ है। सुपरवाइजर और प्रोडक्शन मैनेजर के रंग-ढंग देखकर तो यही लगता है जैसे हम आज भी गुलाम हैं। बात-बात पर डांट-डपट, गाली-गलौज। काम से निकाल देने की धमकी। जबर्दस्ती ओवरटाइम करवाना। पर क्या करें? मजबूरी है। अपना अस्तित्व तो किसी तरह बचाना ही है। लेकिन मन में गुस्सा पल रहा है। लगातार यह विचार उमड़-घुमड़ रहा है कि क्या यही वह आजादी है जिसके लिए भगत सिंह जैसे क्रान्तिकारी नौजवानों ने कुर्बानियां दी थीं। कोई भी आदमी छोटी-मोटी फैक्ट्री बैठाकर उसमें मज़दूर रखकर, सिर्फ उसे किसी तरह जीने भर का पैसा देकर उसकी सारी कमाई गड़प जाता है। सोचता हूं हमारी आजादी कब आयेगी? किस तरह आएगी?

नन्हें लाल, नोएडा

विशेष सामग्री

(बीसवीं किस्त)

पार्टी की बुनियादी समझदारी

अध्याय -7

पार्टी में जनवादी केन्द्रीयता

एक क्रांतिकारी पार्टी के बिना मजदूर वर्ग क्रांति को कतई अंजाम नहीं दे सकता। लेनिन ने इस बात को बार-बार जोर देकर कहा था। स्तालिन और माओ ने भी बराबर इस बात पर जोर दिया और बीसवीं सदी की सभी सफल सर्वहारा क्रान्तियों ने भी इसे सत्यापित किया।

लेनिन ने सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के सांगठनिक उसूलों का निर्धारण किया और इसी फौलादी सांचे में बोल्शेविक पार्टी को ढाला। चीन की पार्टी भी बोल्शेविक पार्टी की ही उत्तराधिकारी थी। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान, समाजवादी समाज में वर्ग-संघर्ष का संचालन करते हुए माओ के नेतृत्व में चीन की पार्टी ने अन्य युगान्तरकारी सैद्धान्तिक उपलब्धियों के साथ-साथ लेनिनवादी सांगठनिक सिद्धान्तों को भी और आगे विकसित किया।

सोवियत संघ और चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के लिए बुर्जुआ तत्वों ने सबसे पहले यही जरूरी समझा कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी का चरित्र बदल दिया जाये। हमारे देश में भी संसदीय रास्ते की अनुगामी नामधारी कम्युनिस्ट पार्टियां मौजूद हैं। भारतीय मजदूर क्रांति को सफल बनाने के लिए भारत में भी सर्वहारा वर्ग की एक सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करने का काम सर्वोपरि है।

इसके लिए बेहद जरूरी है कि मजदूर वर्ग यह जाने कि असली और नकली कम्युनिस्ट पार्टी में क्या फर्क होता है और एक क्रान्तिकारी पार्टी कैसे खड़ी की जानी चाहिए।

इसी उद्देश्य से, फरवरी, 2001 अंक से हमने एक बेहद जरूरी किताब 'पार्टी की बुनियादी समझदारी' के अध्यायों का किस्तों में प्रकाशन शुरू किया है। इस अंक में बीसवीं किस्त दी जा रही है। यह किताब सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान पार्टी-कतारों और युवा पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए तैयार की गयी श्रृंखला की एक कड़ी थी। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस (1973) में पार्टी के गतिशील क्रान्तिकारी चरित्र को बनाये रखने के प्रश्न पर अहम सैद्धान्तिक चर्चा हुई थी, पार्टी का नया संविधान पारित किया गया था और संविधान पर एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी थी। इसी नई रोशनी में यह पुस्तक एक सम्पादकमण्डल द्वारा तैयार की गयी थी। मार्च, 1974 में पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, शंघाई से इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की 4,74,000 प्रतियां छपीं। यह पुस्तक पहले चीनी भाषा से फ्रांसीसी भाषा में अनूदित हुई और 1976 में प्रकाशित हुई। फिर नार्मन बेथ्यून इंस्टीच्यूट, टोरण्टो (कनाडा) ने इसका फ्रांसीसी से अंग्रेजी में अनुवाद कराया और 1976 में ही इसे प्रकाशित भी कर दिया। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद मूल पुस्तक के इसी अंग्रेजी संस्करण से किया गया है।

- सम्पादक

(पिछले अंक से आगे)

सामूहिक नेतृत्व और व्यक्तिगत जिम्मेदारी के बीच के सम्बन्धों को सही ढंग से संभालना

पार्टी में जनवादी केन्द्रीयता द्वारा खड़े किए जाने वाले महत्वपूर्ण सवालों में से एक का संबंध सामूहिक नेतृत्व और व्यक्तिगत जिम्मेदारी को मिलाने वाली व्यवस्था को लागू करने से है- इसका मतलब नेतृत्व के तरीकों में पार्टी की जनदिशा का व्यावहारिक तौर पर लागू किया जाना है।

सामूहिक नेतृत्व और व्यक्तिगत जिम्मेदारी को मिलाने का क्या अर्थ है? अध्यक्ष माओ ने कहा है : "सारी महत्वपूर्ण समस्याएं (निश्चित रूप से अमहत्वपूर्ण, मामूली समस्याएं, या वे समस्याएं नहीं जिनके समाधानों को बैठकों में बातचीत के बाद तय कर लिया गया हो और उन्हें बस अमल में लाए जाने की जरूरत हो) निश्चित रूप से कमेटी के सामने विचार-विमर्श के लिए पेश किया जाना चाहिए, और मौजूद कमेटी सदस्यों को पूरी तरह अपने विचार व्यक्त करने चाहिए और निश्चित निर्णयों पर पहुंचना चाहिए जिन्हें इसके बाद सम्बन्धित सदस्यों द्वारा अमल में लाया जाना चाहिए।" (माओत्से-तुङ, संकलित रचनाएं, "पार्टी की कमेटी व्यवस्था को मजबूत करने के बारे में" पृ. 360-361, अंग्रेजी संस्करण) अध्यक्ष माओ ने इस व्यवस्था को लागू करने के सिद्धांत पर भी रोशनी डाली: "महत्वपूर्ण शक्तियां संकेंद्रित होती हैं, जबकि मन महत्वपूर्ण शक्तियां बिखरी होती हैं। पार्टी के निर्णय हर क्षेत्र में लागू किए जाते हैं। अगर लागू करने वाले ही निर्णय लेने वाले भी हों, तो हम सिद्धांत से विचलित नहीं होंगे। पार्टी कमेटी कार्यों के नियंत्रण के लिए उत्तरदायी है।" (माओत्से-तुङ, स्रोत अज्ञात) यह निर्देश भली-भांति सामूहिक नेतृत्व और व्यक्तिगत जिम्मेदारी को मिलाने वाली व्यवस्था को स्पष्ट कर देता है, और हमें दिखलाता है कि इन दोनों के बीच सम्बन्ध को सही ढंग से कैसे संभाला जाय। पार्टी में जनवादी केंद्रीयता को लागू किए जाने की एक महत्वपूर्ण शर्त है- सामूहिक नेतृत्व सुदृढ़ीकरण; यह पार्टी में केन्द्रीकृत नेतृत्व की स्थापना की एक महत्वपूर्ण गारंटी है। सभी स्तरों पर पार्टी कमेटियां वे निकाय होती हैं जो केंद्रीकृत नेतृत्व को लागू करती है। फिर भी, पार्टी नेतृत्व एक सामूहिक नेतृत्व होता है और विशेष व्यक्तियों के मनमाने निर्णय से निकलने वाला नेतृत्व नहीं होता। ईमानदारी से सामूहिक नेतृत्व की व्यवस्था लागू करके ही हम पार्टी में जनवादी केन्द्रीयता को सही ढंग से लागू कर सकते हैं और तभी पार्टी की कमेटियां सभी कामों को सही ढंग से अंजाम देते हुए नेतृत्व के केंद्रकों की अपनी भूमिका निभा सकती हैं। सामान्य तौर पर एक व्यक्ति एक सवाल के बारे में कहां तक सोच और उसका विश्लेषण कर सकता है, इसकी एक सीमा होती है, इसलिए जब महत्वपूर्ण सवालों पर एक व्यक्ति निर्णय लेता है तो उसके लिए मनोगत और एकतरफा न होना मुश्किल होता है। हम सामूहिक नेतृत्व लागू करें, पार्टी कमेटी के सदस्य हर मायने में पार्टी सदस्यों और जनता की राय का आईना हों, तो वे हर दृष्टिकोण से और गहराई में सवालों का अध्ययन और उन पर चर्चा करें, तभी हम जनता के विवेक को केंद्रित कर सही विचारों पर पहुंचने, वस्तुपरक वास्तविकता से मेल खाने वाले निर्णय लेने और गलतियों के खतरे से बचने या उन्हें कम कर पाने में कामयाब होंगे। इसके साथ ही, यह पार्टी के नेतृत्वकारी सदस्यों को एक दूसरे से सीखने और साथ-साथ आगे बढ़ने के लायक बनाता है।

सामूहिक नेतृत्व को व्यक्तिगत जिम्मेदारी से जोड़ना भी जरूरी है। सामूहिक नेतृत्व को मानने का अर्थ व्यक्ति की भूमिका को नकारना नहीं है। उल्टे, सामूहिक नेतृत्व के अंतर्गत तो यह अनिवार्य हो जाता है कि व्यक्ति पूरी तरह अपनी भूमिका को निभाए। व्यक्तिगत जिम्मेदारी की व्यवस्था को लागू करना और व्यक्ति की भूमिका को पूरे रंग में लाना सामूहिक नेतृत्व को ठोस रूप प्रदान करता है और इसकी प्राप्ति सुनिश्चित करता है। इकाई स्तर के समान ही क्षेत्रीय स्तर पर भी पार्टी ही हर चीज की अगुवाई करती है, इसके पास भारी मात्रा में काम होता है। अगर चर्चा में आए और पार्टी संगठनों द्वारा सामूहिक रूप से हल किए गए सवालों को ऐसे व्यक्तियों के बीच में बांटा न जाए तो उनकी जिम्मेदारी लें तो हम अपने आपको ऐसी स्थिति में डालने का खतरा उठाते हैं जिसमें काम के लिए कोई जवाबदेह नहीं होता, यानी, पार्टी द्वारा अपना नेतृत्व लागू किए जाने के लिए एक असंभव स्थिति।

इसीलिए *"हमें यह जरूर ध्यान रखना चाहिए कि न तो सामूहिक नेतृत्व पर और न ही व्यक्तिगत जिम्मेदारी पर इस कदर अत्यधिक जोर डाला जाना चाहिए कि एक के बदले दूसरे की उपेक्षा हो।"* (माओ त्से-तुङ, संकलित रचनाएं, "पार्टी की कमेटी व्यवस्था को मजबूत करने के बारे में", पृ. -361, अंग्रेजी संस्करण) महत्वपूर्ण प्रश्नों पर व्यक्तिगत आधार पर निर्णय लिये जाने का हमें न सिर्फ विरोध करना चाहिए, बल्कि जिम्मेदारी से बचने की प्रवृत्ति, मीटिंगों में ही हर चीज-बड़े और छोटे सभी मामलों पर चर्चा करने की प्रवृत्ति का भी विरोध करना चाहिए। अन्य नुकसानदेह कार्य-व्यवहारों का भी विरोध किया जाना चाहिए।

सामूहिक नेतृत्व और व्यक्तिगत जिम्मेदारी के मेल को लागू करने के लिए पार्टी की कमेटी व्यवस्था को मजबूत करना चाहिए। अध्यक्ष माओ ने कहा है: *"पार्टी की कमेटी व्यवस्था सामूहिक नेतृत्व के लिए और किसी भी व्यक्ति को मामलों के प्रबंध पर एकाधिकार कायम करने से रोकने के लिए एक महत्वपूर्ण पार्टी संस्था है।"* (माओ त्से-तुङ, वही, पृ.-360 अंग्रेजी संस्करण) कुछ निश्चित इकाइयों में पार्टी संगठनों के नेतृत्वकारी सदस्य यह दावा करते हैं कि बैठक करने के लिए उनके पास वक्त नहीं है, और वे इसे पार्टी कमेटी बैठकों में होने वाली सामूहिक चर्चा की जगह कम सदस्यों द्वारा होने वाली विशेष बैठक को देने के बहाने के रूप में इस्तेमाल करते हैं। दूसरी इकाइयों में, पार्टी संगठन ऐसे सवालों से निपटने के लिए जिन्हें पार्टी कमेटी की बैठक में विचारित और हल किया जाना चाहिए, कई सेक्टरों के "मिले-जुले सम्मेलन" बुला लेते हैं। इस प्रकार, वे पार्टी संगठनों व अन्य संगठनों के संबंध को गड़बड़ कर देते हैं, जिनके बीच नेतृत्वकारी और मातहत संगठनों का सम्बन्ध होता है। ये विभिन्न क्रिया-कलाप सामूहिक नेतृत्व के सिद्धांत के खिलाफ है, और इन्हें पूरी तरह से ठीक करना ही होगा। हर पार्टी कमेटी की बैठक की तैयारी सावधानीपूर्वक पहले ही पूरी कर ली जानी चाहिए ताकि चर्चा विस्तार से की जा सके। अगर अलग-अलग विचार हों तो उन्हें सामने अवश्य रखा जाना चाहिए और किसी भी निर्णय पर पहुंचने से पहले उन पर गहराई से विचार होना चाहिए। यदि कोई प्रश्न स्पष्ट नहीं है और उसे ठीक ढंग से हल नहीं किया जा सकता, तो हमें जल्दबाजी में कोई नतीजा नहीं निकालना चाहिए, बल्कि अध्ययन और जांच-पड़ताल जारी रखनी चाहिए और स्थिति स्पष्ट होने और एक साझी दृष्टि तक पहुंचने तक निर्णय को स्थगित रखना चाहिए।

सामूहिक नेतृत्व को व्यक्तिगत जिम्मेदारी से जोड़ने वाली व्यवस्था को लागू करने के लिए, सचिव और कमेटी सदस्यों के बीच, व्यक्ति और समूह के बीच के संबंध को भी सही ढंग से संभालना जरूरी है। सचिव और कमेटी सदस्यों दोनों को ही सामूहिक नेतृत्व के नजरिये से ही सोचना चाहिए; सचिव को अपने स्तर पर ही हर चीज का हल नहीं निकाल लेना चाहिए, कमेटी सदस्यों को मामलों को समझने के लिए किसी का इंतजार नहीं करना चाहिए-सभी को सामूहिक नेतृत्व के अंतर्गत अवश्य रहना चाहिए। सचिव का कमेटी के सदस्यों से संबंध, अल्पसंख्या का बहुसंख्या से संबंध है और पार्टी कमेटी की बैठकों में, सचिव को स्वयं को अन्य के बराबर रखना चाहिए, अपनी राय देनी चाहिए, और अन्य लोगों के साथ बराबरी के स्तर पर समस्याओं पर चर्चा करनी चाहिए, उसे अपने आपको कमेटी से ऊपर नहीं रखना चाहिए, न ही मामलों का निपटारा मनचाहे ढंग से कर देना चाहिए। सचिव एक 'स्वाड लीडर' (माओ त्से-तुङ, संकलित रचनाएं, खण्ड-IV, "पार्टी कमेटियों के काम करने के तरीके", पृ.-377, अंग्रेजी संस्करण) भी होता है, उसे युद्ध में अपने "स्वाड" के लोगों की अगुवाई करनी ही चाहिए, और बैठकों की तैयारी, संयोजन और संचालन में केंद्रीय भूमिका निभानी चाहिए, और सभी लोगों की अपनी धारणाओं की प्रस्तुति के बाद एक निर्णय तक पहुंचने के लिए, सदस्यों को समस्याओं पर जनतांत्रिक तरीके से चर्चा करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, आदि। अतः मंच खुद ही हथिया लेने के बजाय सभी को बोलने का हक देना चाहिए, सारी अलग-अलग मान्यताओं को सुनना चाहिए, विनम्र और दूरदर्शी होना चाहिए, और दूसरों के साथ अपने बराबर जैसा व्यवहार करना चाहिए। उसे अपने ही 'स्वाड सदस्यों" के बीच सांगठनिक और प्रचारात्मक काम करने और मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुङ विचाराधारा, और पार्टी लाइन दिशा और राजनीतिक सिद्धांतों के आधार पर उनके विचारों को एकजुट करने के काबिल जरूर होना चाहिए। अंत में, यदि उसके काम में कमियां हैं, या वह गलती करता है, तो उसे अवश्य आगे आना चाहिए और जिम्मेदारी लेनी चाहिए। सारे कमेटी सदस्यों को चाहे वे पुराने काडर हों या नए, पार्टी कमेटी को एक मजबूत जुझारू समूह में बदलने के लिए संघर्ष करना ही चाहिए। उन्हें हर काम में रुचि लेनी चाहिए, सामूहिक नेतृत्व में एक सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए, और कमेटी को एक दमदार शक्ति बनाने में योगदान देना चाहिए। हमें "सचिव तय करता है और सदस्य उस हिसाब से काम करते हैं" वाली निर्भर मानसिकता, सौंपे गए काम की जिम्मेदारी साहसपूर्वक न लेने की प्रवृत्ति का विरोध करना चाहिए, और हमें सिर्फ अपने काम में दिलचस्पी लेने और दूसरों के काम की चर्चा होने पर कोई सरोकार न रखने के नकारात्मक रवैये से भी लड़ना चाहिए।

जब पार्टी कमेटी के प्रस्तावों को लागू करने का समय आता है और जब हर सदस्य को काम और जिम्मेदारियों का उसका हिस्सा सौंप दिया जाता है, तो सचिव- "स्वाड लीडर" के रूप में - को पार्टी कमेटी के निर्णय के सिद्धांतों के आधार पर कामों को नेतृत्व देना चाहिए, और अपनी राय कभी नहीं थोपनी चाहिए। कमेटी के प्रस्तावों

(पेज 10 पर जारी)

होण्डा श्रमिक फिर आंदोलन की राह पर

(बिगुल संवाददाता)

रुद्रपुर (ऊधम सिंह नगर), 1 नवम्बर। बहुराष्ट्रीय कम्पनी 'होण्डा पावर प्रो. लि.' के प्रबंधन द्वारा 'श्रीराम होण्डा श्रमिक संगठन' के पूर्व अध्यक्ष/मंत्री बी. सी. पाण्डे की सेवा समाप्ति, श्रमिकों के शोषण-उत्पीड़न, त्रिवर्षीय वेतन समझौता आदि मांगों के संदर्भ में जारी संघर्ष की कड़ी में विगत 18 अक्टूबर से समस्त श्रमिकों ने सामूहिक रूप से 'भूखे रहकर काम करने का' आंदोलन शुरू किया। इसके समर्थन में श्रमिकों के परिवारों ने गेट के बाहर धरना प्रर्दशन शुरू कर दिया। छह दिन तक चली इस सामूहिक भूख हड़ताल के दौरान कारखाने पर लगभग श्रमिकों का नियंत्रण कायम रहा। उत्तेजित श्रमिकों ने प्रबंधकों-अधिकारियों को लगभग 36 घंटों तक बंधक बनाये रखा। वार्ता के बहाने जिलाधिकारी ने स्थानीय 'टाप मैनेजमेण्ट' को बमुश्किल छुड़वाया। बौखलाये प्रबंधकों ने 23 अक्टूबर को गैर कानूनी तरीके से तालाबंदी कर दी और भूमिगत हो गये। चौतरफा व्यापक दबाव के कारण प्रबंधन को 28 अक्टूबर से तालाबंदी खोलने के लिए बाध्य होना पड़ा। होण्डा श्रमिक कारखाने के भीतर रहकर अपने आंदोलन को गति दे रहे हैं।

उल्लेखनीय है कि होण्डा प्रबंधन रुद्रपुर (उत्तरांचल) की इस इकाई को यहां स्थानान्तरित करने की एक कुत्सित योजना पर काम कर रहा है। इसी क्रम में उसने कारखाने के सबसे महत्वपूर्ण विभाग एल्यूमिनियम मशीन शाप को श्रमिकों के चार माह लम्बे संघर्ष के बावजूद जुलाई माह में ग्रेटर नोएडा स्थानांतरित करने में सफल रहा है। पिछली शिफ्टिंग के बाद के दो माह के दौरान प्रबंधकों द्वारा मनमाने तौर पर वेतन कटौती, सीकेडी/एस पी डी (पैकिंग), व पी सी पी सी (स्टोर) आदि विभागों के नब्बे प्रतिशत कामों की शिफ्टिंग, 1 जुलाई से बकाया त्रिवर्षीय वेतन समझौते की जगह प्रबंधन द्वारा वेतनमानों व सहूलियतों में कटौती व उत्पादन नार्म्स में बेइन्तहा बढ़ोत्तरी का दबाव देने से श्रमिकों में लगातार उत्तेजना का माहौल व्याप्त होता जा रहा था। इसी क्रम में विगत 28 सितम्बर को श्रमिक नेता बी.सी. पाण्डे की सेवा समाप्ति से श्रमिकों को मजबूरन आंदोलन की राह पकड़नी पड़ी।

इस अन्याय के खिलाफ बी.सी. पाण्डेय सपरिवार गेट पर धरने पर बैठ गये जो अब तक जारी है। श्रमिक संगठन ने मामले को वार्ता द्वारा हल करने का प्रयास किया। कोई हल न मिलने की स्थिति में यूनियन के 3 अक्टूबर को 14 दिन की हड़ताल की नोटिस दे दी लेकिन कई दौर की द्विपक्षीय-त्रिपक्षीय वार्ताओं की असफलता के बाद श्रमिकों ने बगैर किसी विशेष तैयारी के हड़बड़ी में सामूहिक भूख हड़ताल जैसा 'हाई फार्म' ले लिया।

इतने बड़े आंदोलन के बाद भी इलाकाई मज़दूरों का यह कोई व्यापक आंदोलन तो नहीं बन पाया लेकिन आनन्द निशिकावा, सूर्या रोशनी, ईस्टमैन ऐग्रो आदि के मज़दूरों व बिजली, बीमा आदि के कर्मचारियों व आसपास गांव के नागरिकों ने गेट पर प्रदर्शन व चक्का जाम करके अपनी वर्गीय एकजुटता जरूर प्रदर्शित की। उधर खटीमा के 'ईस्टर इण्डिया इम्पलाइज यूनियन' व 'पाली

- श्रमिक नेता के निष्कासन के खिलाफ फैक्ट्री में छह दिन तक सामूहिक भूख हड़ताल
- डेढ़ दिन तक प्रबंधकों को बंधक बनाया
- प्रबंधकों ने पांच दिनों तक अवैध तालाबंदी की

प्लैक्स इम्पलाइज यूनियन' ने उपजिलाधिकारी को ज्ञापन सौंपकर इस भूख हड़ताल के समर्थन में क्रमिक अनशन की चेतावनी दे दी थी। तालाबंदी के बाद सीटू, इंटक, एचएमएस, एटक, बिगुल मज़दूर दस्ता आदि ने सामूहिक तौर पर श्रमायुक्त उत्तंराचल को ज्ञापन सौंपकर गैर कानूनी तालाबंदी को अवैधानिक घोषित करने की मांग की जिस पर दबाव में श्रमायुक्त ने जांच के आदेश पारित कर दिये। दूसरी तरफ इलाके की तमाम ट्रेड यूनियनों और सामाजिक संगठनों ने 12 नवम्बर को रुद्रपुर में बड़ी रैली निकालने व जिलाधिकारी कार्यालय पर प्रदर्शन करने का कार्यक्रम घोषित किया है।

उधर प्रबंधन होण्डा मज़दूरों की गैर राजनीतिक चेतना का लाभ उठाते और उन्हें बरगलाने के प्रयासों में लगा हुआ है। वह अपने कुछ चहेते मज़दूरों के माध्यम से तोड़फोड़ की असफल कोशिशें भी करता रहा। प्रबंधन का मुख्य लक्ष्य यूनियन को तोड़ने और मज़दूरों के बीच फूट पैदा करने की है ताकि उसके दमन का पारा और तेज चल सके और अंततः पूरे कारखाने को यहां से ले जाने में वह कामयाबी हासिल कर सके।

होण्डा श्रमिकों के लिए यह बेहद संजीदगी से सोचने का वक्त है कि प्रबंधन का हर कदम उनके अस्तित्व की चुनौती है। आपसी बंटवारे के कारण ही ईस्टर इण्डस्ट्रीज के 31 श्रमिकों की सेवाएं समाप्त हो चुकी हैं। वक्ती तौर पर मज़दूर आंदोलन की पराजय के इस दौर में अपनी संग्रामी एकजुटता और इलाकाई एकताबद्ध संघर्ष के दम पर ही अपने अस्तित्व की रक्षा की जा सकती है। होण्डा श्रमिकों के सामने पिछले चार माह के संघर्ष का सबक भी है। नेतृत्व के साथियों को भी एक सुनिश्चित सोच और मुकम्मल रणनीति के तहत ही अपने आंदोलन को आगे बढ़ाना होगा। उन्हें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि द्वितीय श्रम आयोग की घातक रिपोर्ट आ चुकी है और मज़दूर विरोधी श्रम कानूनों के पारित होने में चंद लम्हे और बचे हैं। इसलिए उन्हें भी अपनी मुक्ति के देशव्यापी मज़दूर आंदोलन के एक फौजी के तौर पर अपने को देखना होगा। यह आपसी अंतरविरोधों में उलझने का नहीं बल्कि मालिकों की साजिशों को समझने का वक्त है।

होण्डा में एक श्रमिक का निष्कासन जापानी मालिकों की एक सोची-समझी रणनीति का हिस्सा है। राज्य के कारखानेदारों का चैम्बर भी इलाके के सबसे जुझारू व सचेत होण्डा श्रमिक आंदोलन को ध्वस्त करने के मंसूबे रखता है। शासन-प्रशासन तो मालिकों के हाथ की कठपुतली है। यह यूं ही नहीं है कि एक तरफ तो जिला प्रशासन व श्रम विभाग निष्कासन की कार्रवाई को गलत ठहराता है और दूसरी तरफ प्रबंधन पर दबाव बनाने की जगह शहर में फौव्वारा बनवाने के लिए होण्डा से तीन लाख रुपये लेने की सहमति बनाता है।

इन स्थितियों को समझना होगा और अपने संघर्ष को आगे बढ़ाना होगा।

यूनीपार्ट्स इण्डिया लि. में मालिक-प्रशासन-गुंडा गंठजोड़

हक मांगने पर निलम्बन, जेल यात्रा और-गुण्डों से पिटाई

(बिगुल संवाददाता)

नोएडा, फेज-2। यूनिपार्ट्स इण्डिया लि. में प्रबंधन ने शासन-प्रशासन से गठजोड़ कर मज़दूरों को छांटना-निकालना, झूठे आरोपों में फंसाना शुरू कर दिया है। नोएडा में यह कोई नयी घटना नहीं है। सरकार की शह, पूंजीपतियों को लूट की मिली खुली छूट और मज़दूर आंदोलन के अर्थवादी भटकाव के कारण उपजी मज़दूरों की निराशा-हताशा के बीच इस तरह के काले-कारनामें धीरे-धीरे आम होते जा रहे हैं।

इस कम्पनी के मज़दूर प्रतिनिधि ने बिगुल संवाददाता को बताया कि मालिक परमजीत सोनी व प्रबन्धन, मज़दूरों का लगातार घोर शोषण करते चले आ रहे हैं। जब प्रबन्धन की मनमानी के खिलाफ मज़दूर संगठित होकर अपने श्रम अधिकारों की मांग के लिए आगे आये तो मालिकान ने यूनियन के अगुवा मज़दूरों को कारखाना से निकालना, उनको गुण्डों व पुलिस से धमकी दिलवाना और यहां तक कि मज़दूरों को नाजायज पुलिस केस में फंसाना शुरू कर दिया।

संगठन को तोड़ने की मंशा से सबसे पहले यूनियन के सचिव को बिना किसी कारण के निलम्बित कर, फैक्ट्री से निकाल दिया गया। परंतु मैनेजमेन्ट का मंसूबा पूरा नहीं हो सका। उल्टे मज़दूर पहले से भी अधिक एकजुट होकर निलंम्बित पदाधिकारी को वापस काम पर लेने तथा अपनी मांगों को पूरा किये जाने जो लेकर संघर्षरत रहे और आज भी हैं। अब तक मज़दूरों के संघर्ष के दम पर ही कुछ को परमानेन्ट लेटर, बस की सुविधा, जूता आदि मिल सका है।

फेज-2 स्थित यूनिपार्ट्स ट्रैक्टर के पार्ट्स बनाती है। इसमें कुल चार सौ मज़दूर काम करते हैं। इनमें से आधे परमानेन्ट कहे जाते हैं और आधे मज़दूर कैजुअल, ठेकेदारी तथा अप्रेन्टिसशिप में काम करते हैं। यूनीपार्ट्स में रजिस्टर्ड यूनियन है।

यूनियन में पहला मांगपत्रक अक्टूबर 2001, में दिया था। साल भर बाद भी कुछ सुनवायी न होने पर यूनियन ने मैनेजमेन्ट के सामने अपनी मांगों को दुहराया। मांगे मानना तो दूर रहा, मज़दूरों की एकता से बौखलाए मैनेजमेन्ट ने 10. 10.2002 को यूनियन के पांच पदाधिकारियों सहित नौ लोगों को कारखाना से अचानक निकाल दिया। ऊपर से यूनियन पदाधिकारियों को गुण्डों द्वारा धमकियां भी दी जाती रही हैं।

मालिक-प्रशासन-गुण्डा-गठजोड़ के याराने की हद तो उस समय पता चली जब 11.10.2002 को निलम्बित मज़दूर हाजिरी लगाने गेट पर आये। हाजिरी लगाने के तय समय से पहले मज़दूर फैक्ट्री पहुंच गये। इस वजह से निलम्बित मज़दूर फैक्ट्री गेट के सामने वाले होटल पर बैठे बातचीत कर रहे थे। तब तक पुलिस आयी और सभी निलम्बित मज़दूरों को धारा-151 के तहत उठा ले गयी। जबकि मज़दूर नेताओं का कहना है कि मज़दूर शांतिपूर्वक बैठे थे। साथ ही साथ उन्होंने यह भी कहा कि पुलिस मालिक से पैसा लेकर मज़दूरों को परेशान कर रही है, इसका जीता-जागता उदाहरण है- कि मैनेजमेण्ट के एक बुलावे पर पुलिस का चेतक सरपट आता है परंतु आज तक मज़दूरों की तरफ से पुलिस रिपोर्ट तक दर्ज नहीं किया है।

जब मज़दूर अपने साथियों की जमानत के लिए पहुंचे तो पुलिस बिरादरी ने प्रत्येक जमानत पर चार सौ रुपये मांगे। जब मज़दूरों ने यह कहा कि ऐसी जमानतें तो व्यक्तिगत मुचलके पर होती हैं तो पुलिस ने कहा करा लो। अन्त में पैसा देकर जमानत करानी पड़ी। वैसे मज़दूरों ने इस घटना की जानकारी स्थानीय आला अफसरों से लेकर प्रधानमंत्री, श्रममंत्री मानवाधिकार आयोग तक दे दी हो। परंतु मज़दूरों को इस पर कार्रवाई का भरोसा उतना ही है जितना कारिन्दे की शिकायत जमींदार से करने पर होती है। साफ है कि मालिकान बौरा गये हैं। हालत यह है कि परमानेन्ट किये जाने की मांग करने पर निलम्बन मिल रहा है, कैन्टीन की मांग करने पर जेल की हवा खाने को मिल रही है। ऐसे रंग-ढंग में अगर मज़दूरों ने भूलकर कहीं आवास की मांग कर दिया तो देश निकाला तक हो सकता है।

लेकिन यूनीपार्ट्स मालिकान-मैनेजमेण्ट की इस गुण्डागर्दी के बावजूद अभी तक मज़दूरों ने हार नहीं मानी है। अपनी यूनियन तले वे एकजुट हैं। लेकिन यूनीपार्ट्स के साथियों को यह भी समझना होगा कि यह मज़दूर आंदोलन के लिए बेहद कठिन समय है। आज सभी मालिकान एकजुट होकर मज़दूर वर्ग पर हमले कर रहे हैं। सरकार-प्रशासन-कोर्ट-कचहरी सब उनकी हमजोली बने हुए हैं। ऐसे में हमें भी अपनी लड़ाई को अधिक से अधिक व्यापक बनाना होगा। आज सिर्फ अपने कारखाने के स्तर पर अलग-अलग लड़ते हुए हमारे लिए जीतना नामुमकिन होता जा रहा है। ऐसे में, एक तो हमें अपनी लड़ाई को व्यापक बनाते हुए अन्य कारखानों से जोड़ने की दिशा में कोशिश करनी होगी। दूसरे, हमें मज़दूर वर्ग के समूचे ऐतिहासिक मिशन, यानी मज़दूर वर्ग का राज कायम करने की लम्बी लड़ाई को सामने रखकर अपनी छोटी-मोटी लड़ाइयों को इस दिशा में सिर्फ एक रिहर्सल मानकर चलना होगा।

कारखाने का मालिक तो सिर्फ सामने दिखायी पड़ने वाला दुश्मन है। लेकिन मज़दूर वर्ग की दुश्मन तो यह समूची पूंजीवादी व्यवस्था है-अफ़सरशाही, चुनावबाज नेता, प्रशासन-न्यायपालिका इस व्यवस्था के ही अंग हैं जो पूंजीपतियों की सेवा में डटे रहते हैं। इसलिए इस सच्चाई को अच्छी तरह समझते हुए यूनीपार्ट्स के साथियों को व्यवस्था बदलने की इस लड़ाई की तैयारी की दिशा में भी साथ ही साथ बढ़ना होगा।

रामाविजन के एक और श्रमिक से जबरिया इस्तीफा

(बिगुल संवाददाता)

किच्छा (ऊधमसिंह नगर)। पिक्चर ट्यूब निर्माता 'रामविजन लिमटेड' के प्रबंधन ने कारखाने के एक जुझारू श्रमिक शिशुपाल सिंह की अचानक गेट इंट्री बंद कर दी, फिर उसे बुलवाकर पांच बूंदकधारियों के बीच बैठाये रखा और जबरिया त्यागपत्र लिखवा लिया। यही नहीं पूरे क्षेत्र में न दिखाई देने का धमकी देकर उसे रवाना कर दिया गया। शिशुपाल जब थाने में रिपोर्ट दर्ज कराने गया तो वहां पहले से ही प्रबंधन के लोग मौजूद थे और उसे डरा धमकाकर वहां से भी भगा दिया।

जैन ग्रुप के इस कारखाने में मज़दूरों के दमन व शोषण-उत्पीड़न का एक इतिहास रहा है। यहां के मज़दूर दो बार लम्बे-लम्बे आंदोलन भी कर चुके हैं। सन् 1998 के तीन माह के लम्बे आंदोलन की पराजय के बाद से तो मज़दूरों पर जैसे कहर ही बरपा हो गया है। उस वक्त पांच मज़दूर नेताओं को निकाला गया था। उसके बाद से तो यह क्रम लगातार जारी है। यही नहीं लगभग दो साल पूर्व प्रबंधकों ने एक अफवाह फैलाकर कि जिसकी नौकरी 10 वर्ष पूरी हो जाएगी उसका पेंशन कटौती होने से भारी आर्थिक क्षति होगी, लगभग आधे से ज्यादा नियमित श्रमिकों को हिसाब लेकर जाने के झांसे में फंसा दिया। आज हालात ये है कि कारखाने में बमुश्किल सौ नियमित मज़दूर बचे हैं जिनके भी सिर पर तलवार लटक रही है।

इस कारखाने में प्रबंधन का अपना कानून चलता है। यहां कैजुअल की जगह 'ट्रायल' के नाम पर पिछले तीन-चार सालों से मामूली दिहाड़ी पर मज़दूर रखे गये हैं। बेरोजगारी की मार से त्रस्त वे काम करने के लिए मजबूर है। यही नहीं यहां आठ घण्टे काम की जगह में 208 घंटे काम करवाने की परिपाटी चल रही है। प्रबंधन महीने में बमुश्किल 16-17 दिन कारखाना चलाता है वह भी किस्तों में और अपनी मनमर्जी से। इन्हीं कार्यदिवसों में 12-14 घण्टे की डियूटी करके नियमित मज़दूरों को अपने काम के घंटे पूरे करने होते हैं। मज़दूरों को यह मालूम नहीं होता कि कब प्लांट चलेगा और कब बंद हो जायेगा। यदि कार्य दिवसों में ही मासिक घंटे पूरी नहीं होंगे तो वेतन कटौती निश्चित है। वैसे भी पूरा काम करने के बावजूद नियमित मज़दूरों को बमुश्किल दो से ढाई हजार रुपये मासिक तक ही मिल पाता है।

यहां के मज़दूरों पर कहीं आने-जाने या सार्वजनिक गतिविधियों में भागीदारी तक पर रोक है। पास के होण्डा मज़दूरों के शिफ्टिंग विरोधी आंदोलन के दौरान जब यहां के मज़दूरों ने गुपचुप तरीके से अपना आर्थिक सहयोग दिया तो प्रबंधन ने उस पर भी मज़दूरों को जमकर हड़काया।

अभी कारखाने से निकाला गया मज़दूर साथी शिशुपाल रामाविजन आंदोलनों का एक महत्वपूर्ण स्तम्भ रहा है। वह जब-तब प्रबंधकों के मनमानेपन का विरोध करता रहा है, रोक-टोक के बावजूद व अन्य मज़दूर संघर्षों में जाता रहा है। प्रबंधन लम्बे समय से उसे निकालने की फिराक में था और अंततः उसने अपने मंसूबे पूरे कर लिए।

शिशुपाल की सेवा समाप्ति एक उदाहरण है। आज इलाके और पूरे देश में रामाविजन जैसे कारखानों की भरमार है जहां प्रबंधकों की तानाशाही से मज़दूरों की दयनीय स्थिति बनी हुई है। यही स्थिति लाने के लिए और उसे कानूनी जामा पहनाने के लिए ही श्रम कानूनों में घातक बदलावों की तैयारियां चल रही हैं। ऐसे ही "औद्योगिक संबंध" बनाने की पेशकश द्वितीय श्रम आयोग की रिपोर्ट में भी की गई है। जाहिरा तौर पर आज देश की मज़दूर आबादी को इस हकीकत और चुनौती को स्वीकार करना होगा और इसके खिलाफ लम्बे संघर्ष के लिए तैयार होना होगा।

'बक़लमे-खुद' स्तम्भ के बारे में चन्द बातें

-सम्पादक मण्डल

इस स्तम्भ के अन्तर्गत हम ज़िन्दगी की जद्दोजहद में जूझ रहे मज़दूरों और उनके बीच रहकर काम करने वाले मज़दूर संगठनकर्ताओं'-कार्यकर्ताओं की साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित करते हैं – कविताएं, कहानियां, डायरी के पन्ने, गद्यगीत आदि-आदि।

इस स्तम्भ की शुरुआत की एक कहानी है। 'बिगुल' के सभी प्रतिनिधियों-संवाददाताओं के अनुभव से यह जुड़ी हुई है। हमने पाया कि जो कुछ पढ़े-लिखे और उन्नत चेतना के मज़दूर हैं, वे गोर्की की 'मां', उनकी आत्मकथात्मक उपन्यास-त्रयी और अन्य रचनाओं को तो बेहद दिलचस्पी के साथ पढ़ते हैं, प्रेमचन्द उन्हें बेहद पसन्द आते हैं, आस्त्रोव्स्की की 'अग्निदीक्षा' और पोलेवेई की 'असली इंसान' ही नहीं, कुछ तो बाल्जाक ओर चेर्निशेव्स्की को भी मगन होकर पढ़ते हैं। लेकिन जब हम हिन्दी के आज के सिरमौर वामपंथी कथाकारों की बहुचर्चित रचनाएं उन्हें पढ़ने को देते हैं तो वे बेमन से दो-चार पेज पलटकर धर देते हैं। पढ़कर सुनाते हैं तो उबासी या झपकी लेने लगते हैं। यदि उन सबकी राय को समेटकर थोड़े में कहा जाये, तो इसका कारण यह है कि ज्यादातर वामपंथी-प्रगतिशील लेखक आज अपनी रचनाओं में आम आदमी की ज़िन्दगी की, संघर्ष और आशा-निराशा की जो तस्वीर उपस्थित कर रहे हैं, वह आज की ज़िन्दगी की सच्चाइयों से कोसों दूर है। वह या तो ट्रेनों-बसों की खिड़कियों से देखे गये गांवों और मज़दूर बस्तियों का चित्र है, या फिर अतीत की स्मृतियों के आधार पर रची गयी काल्पनिक तस्वीर। नयेपन के नाम पर जो कला का इन्द्रजाल रचा जा रहा है, वह भी आम जनता के लिए बेगाना है। कारण स्पष्ट है। दरअसल इन तथाकथित वामपंथियों का बड़ा हिस्सा "वामपंथी कुलीनों" का है। ये "कलाजगत के शरीफजादे" हैं जो प्राय: प्रोफेसर, अफसर या खाते-पीते मध्यवर्ग के ऐसे लोग हैं जो जनता की ज़िन्दगी को जानने-समझने के लिए हफ्ते-दस दिन की छुट्टियां भी उसके बीच जाकर बिताने का साहस नहीं रखते। ये अपने नेहनीड़ों के स्वामी सद्गृहस्थ लोग हैं। ये गरुड़ का स्वांग भरने वाली आंगन की मुर्गियां हैं। ये फर्जी वसीयतनामा पेश करके गोर्की, लू शुन, प्रेमचन्द का वारिस होने का दम भरने वाले लोग हैं।

समय आ रहा है जब क्रान्तिकारी लेखकों-कलाकारों की एकदम नई पीढ़ी जनता की ज़िन्दगी और संघर्षों के ट्रेनिंग-सेण्टरों से प्रशिक्षित होकर सामने आयेगी। इन कतारों में आम मज़दूर भी होंगे। भारत का मज़दूर वर्ग आज स्वयं अपना बुद्धिजीवी पैदा करने की स्थिति में आ चुका है। भारत का यह नया बुद्धिजीवी मज़दूर या मज़दूर बुद्धिजीवी सर्वहारा क्रान्ति की अगली-पिछली पांतों को नई मजबूती देगा। आज परिस्थितियां ऐसी हैं कि हम अपेक्षा करें कि भारतीय मज़दूर वर्ग भी अपना इवान बाबुश्किन और मक्सिम गोर्की पैदा करेगा। 'बिगुल' की कोशिश होगी कि वह ऐसे नये मज़दूर लेखकों का मंच बने और प्रशिक्षणशाला भी।

इसी दिशा में, पहलकदमी जगाने वाली एक शुरुआती कोशिश के तौर पर इस स्तम्भ की शुरुआत हुई है। मुमकिन है कि मज़दूरों और मज़दूरों के बीच काम करने वाले संगठनकर्ताओं की इन रचनाओं में कलात्मक अनगढ़ता और बचकानापन हो, पर इनमें जीवित यथार्थ की ताप और रोशनी के बारे में आश्वस्त हुआ जा सकता है। ज़िन्दगी की ये तस्वीरें सच्ची वामपंथी कहानी का कच्चा माल भी हो सकती हैं। और फिर यह भी एक सच है कि हर नयी शुरुआत अनगढ़-बचकानी ही होती है। लेकिन मंजे-मंजाये घिसे-पिटे लेखन से या काल्पनिक जीवन-चित्रण के उच्च कलात्मक रूप से भी ऐसा अनगढ़ लेखन बेहतर होता है जिसमें जीवन की वास्तविकता और ताजगी हो।

हमारा यह अनुरोध है कि मज़दूर साथी अपनी ज़िन्दगी की क्रूर-नंगी सच्चाइयों की तस्वीर पेश करने के लिए अब खुद कलम उठायें और ऐसी रचनाएं इस स्तम्भ के लिए भेजें। **साथ ही प्रकाशित रचनाओं पर अपनी प्रतिक्रिया भी भेजे।**

बक़लमे-खुद

नीबू और शिकंजा

♦ भूपेन्द्र सिंह

साथियो! अपने पीले-पीले रसदार नीबुओं को तो देखा ही होगा। उनका प्रयोग भी करते ही होंगे। नीबू खरीदते समय उनको चेक किया जाता है। 'कितने मोटे-ताजे हैं?' 'कितना रस है?' 'कितने रुपये में मिलेगा?' अगर मंहगे हुए तो उसमें कुछ कमी बताकर बिना खरीदे चल देंगे। सस्ते हुए तो अधिक से अधिक ले लेंगे। फिर उन्हें काटकर शिकंजे में लगाया जाता है। उनका रस निकालकर, अच्छी तरह निचोड़कर, उन्हें रसहीन बनाकर फेंक दिया जाता है। उनके छिलके कूड़े के ढेर में मिल जाते हैं और फिर कूड़ा ही बन जाते हैं। वे सूखकर भुरभुरा जाते हैं, मिट्टी में मिल जाते हैं।

साथियो! कुछ नीबुओं को हाथ से निचोड़ा जाता है तो कुछ को शिकंजे में फंसाकर। जो नीबू हाथ से निचोड़े जाते हैं उनके बीज बच जाते हैं, लेकिन शिकंजे में निचोड़े हुए नीबू के नहीं। उनका तो साथ में ही रस निकल जाता है। हाथ से निचोड़े नीबू के बीज फिर से अंकुरित हो जाते हैं। पौधा बनते हैं। उन पर नीबू फिर से लगते हैं फिर उनको भी शिकंजे में आना ही पड़ता है। कुछ नीबुओं को तो कच्चा ही तोड़ लिया जाता है और कुछ को पकने पर। कच्चे नीबू से रस कम निकलता है, वे जल्दी ही निचुड़ जाते हैं, पके नीबू से अधिक रस निकलता है और उन्हें निचोड़ने में कुछ टाइम लगता है।

पाठको! आप सोच रहे होंगे कि यह भी कोई कहानी हुई। मगर आप एक मध्यवर्गीय पाठक हैं तो शायद इस कहानी से आपकी जिंदगी का कोई मेल न भिड़े। लेकिन एक मज़दूर की जिंदगी तो शिकंजे में फंसे नीबू जैसी ही है। यह कहानी तो उनकी अपनी ज़िन्दगी की कहानी है।

मज़दूर भाइयो! जिस तरह बाजार में नीबू चेक करके खरीदा जाता है, ठीक उसी प्रकार आपको भी कोई कम्पनी या ठेकेदार चेक करके खरीद लेता है और काम पर लगा देता है। आपको खरीदने से पहले, मेरा मतलब है कम्पनी में रखने से पहले आपका रेट पूछा जाता है-कितने रुपये में बिक सकते हो? मतलब कि कम्पनी या ठेकेदार से कितने रुपये लोगे? अगर आपने ज्यादा रुपये बताये तो आपके

अंदर कोई कमी बताकर आपको बैरंग वापस कर दिया जायेगा। अगर आप अपना भाव (रेट) सस्ता बताओगे तो आपको काम पर रख लिया जायेगा। आपसे कहा जायेगा कि हमारी कम्पनी में बहुत सारी सीटें खाली हैं, अपने और साथियों-भाई-बन्धुओं को भी बता देना। वे भी यहां आकर अपना टेस्ट दे देंगे।

... तो इस तरह आपको कम्पनी में रख लिया जाता है। कोरे कागज पर आपके दस्तखत करा लिये जाते हैं, जिससे आपको कम्पनी किसी भी समय निकाल सके। इस पर अगर चूं-चपड़ किया तो काम से बाहर। ... चलिए आप काम पर लग गये। अगर आप हेल्पर हुए तब तो आपसे कोई भी काम कराया जा सकता है। झाड़ू लगाने से लेकर भारी से भारी बोझा ढोने तक। आपको जबर्दस्ती ओवर टाइम पर भी रोक लिया जाता है। आपको रुकना पड़ता है क्योंकि यह आपकी मजबूरी है। सिर्फ आठ घंटे काम के बदले मिले पैसे में आपका गुजारा नहीं हो पाता। आप मजबूर हैं ओवर टाइम करने के लिए। हर रोज 12 या 14 घण्टे काम, कभी-कभी 16 या 18 घण्टे भी लगातार। आपको कितना टाइम मिलता है आराम करने का। कम्पनी से घर तक आने-जाने में कितना समय लगता है। फिर घर का भी कोई न कोई छोटा-मोटा काम होता ही है। खाना बनाना, नहाना-धोना, खाना-सब कुछ के बाद सोने के लिए कितना समय मिल पाता है, मुश्किल से दो-चार घण्टे। यही न! इतने में आपकी थकावट तो दूर हो ही नहीं सकती।

... थकावट की मत पूछिये। कारखाने में किस तरह निचोड़ा जाता है, आप यह अच्छी तरह जानते हैं। शरीर में जितनी ताकत नहीं उससे ज्यादा काम। थकावट नस-नस में भरती जाती है। शरीर पसीने में पिघला-सा जाता है। पूरा शरीर पीड़ा से चीत्कार कर रहा होता है। ऐसे में अगर आपने थोड़ी देर किसी कोने में बैठकर थकावट दूर करने की गुस्ताखी की तो फिर ऑफिसर की डाँट-डपट, गाली-गलौज। सब कुछ सुनते-सहते मन मारकर आपको फिर काम में जुट जाना होता है। पेट की भूख जो दहकती रहती है :

मौत से भूख बड़ी है
सुबह मिटायी तो
शाम को

सामने खड़ी है।

पेट की इस आग को बुझाने के लिए चुपचाप फिर काम पर लग जाना पड़ता है। दिन भर के इस हाड़तोड़-कमरतोड़ मेहनत के बाद थकावट से चूर-चूर घर की तरफ रवानगी होती है।

दिन भर की इस मेहनत के बीच सोचने की फुर्सत कहां! टारगेट पूरा करने का दबाव, खोपड़ी पर सवार अफ़सर का दबाव और फिर पेट की भूख का प्रेशर। हर पल तनाव, हर पल संकट ...। इसे तो सहना ही है, नहीं तो

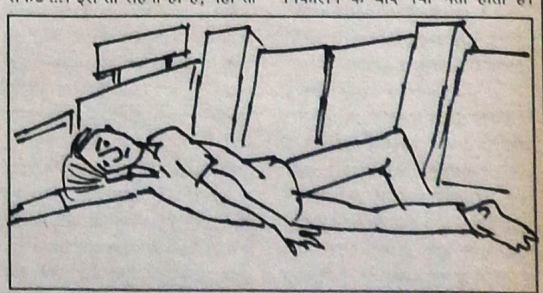

शाम वाली भूख ...

तो अब आप शिकंजे में अच्छी तरह फंस चुके हैं। अब आपके शरीर का अस्थिपंजर निकल रहा है।

अरे, एक बात तो मैं भूल ही गया। आपके छोटे भाइयों को भी इस शिंकजे पर चढ़ना पड़ रहा है। हां, इस कच्ची उमर में ही टूटना पड़ रहा है उन्हें। उनकी शक्ति तो आपसे पहले ही निचुड़ जाती है, कच्ची उमर जो है! आप पकी उमर वाले हैं। आपसे रस निकलने में थोड़ा वक्त लगता है।

तो धीरे-धीरे रस निकलते-निकलते आपका शरीर कमजोर, सुस्त, बेजान, ढीला-ढाला अलसाया-सा हो जाता है। चेहरे पर उदासी, मन में निराशा घर कर लेती है। समय की कमी, काम के दबाव से आप कुछ सोच भी नहीं पाते। शरीर टूटा-टूटा सा हो जाता है। बीमारी घेर लेती है। पैसे की कमी से आप अच्छा इलाज भी नहीं कर पाते। इस तरह अस्थिपंजर बन जाता है एक दिन आपका शरीर। अब आपसे काम हो नहीं पाता और कम्पनी आपको निकाल बाहर कर देती है। ... शिकंजे से निकालकर फेंक दिया जाता है, क्योंकि अब रस नहीं निकलता। अब आप मात्र छिलका रह गये हो। यानी अब बस हड्डियां ही हड्डियां बची हैं।

आपको अपनी कम्पनी से निकालने के बाद नयी भर्ती होती है। ... शिकंजे में नया नीबू फंसाया जाता है। नये सिरे से निचोड़ने के लिए। ... इसका भी आप जैसा हाल बनाकर फेंक दिया जाता है।

(पेज 10 पर जारी)

(पेज 1 से आगे)

विश्व सर्वहारा क्रान्ति के नये चक्र के महासमर ...

में न केवल विदेशी हमलावरों को पराजित किया वरन देश के भीतर के क्रान्तिविरोधी तत्वों को भी कुचल दिया। इसके बाद अभी समाजवाद की दिशा में शुरुआती कदम ही आगे बढ़ाये गये थे कि हिटलर-मुसोलिनी के नेतृत्व में फासीवादी दानव मज़दूर वर्ग के राज्य को निगल जाने के लिए आ खड़ा हुआ। इस दानव से समाजवादी राज्य को बचाने के लिए करोड़ों रूसियों को अपनी जानें कुर्बान करनी पड़ीं। महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध (1941-45) के दौर में रूसी मज़दूर वर्ग ने बोल्शेविक पार्टी व लाल सेना के नेतृत्व में अविश्वसनीय कुर्बानियों की मिसालें फिर से कायम कर विश्व मानवता को फासीवादी राक्षस से रक्षा की।

कहने का मतलब यह कि लगातार अस्तित्व के संकटों से जूझते हुए भी सोवियत संघ में समाजवादी समाज के निर्माण की दिशा में जो उपलब्धियां हासिल हुईं उसे देखकर दुनिया ने दांतों तले उंगली दबा ली। गरीबी-बेकारी का नामोनिशान मिटा दिया गया। शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास और मनोरंजन की सुविधाएं सभी नागरिकों को उपलब्ध हो चुकी थीं। खेती और औद्योगिक उत्पादन-दोनों ही क्षेत्रों में आश्चर्यजनक उपलब्धियां हासिल की गयीं। 1930 के दशक की विश्वव्यापी आर्थिक महामन्दी के दौर में अकेला रूस ही था जो इससे न केवल अछूता था वरन उसकी अर्थव्यवस्था की विकास दर नये-नये रिकार्ड कायम कर रही थी। स्त्रियां व्यापक पैमाने पर सामाजिक उत्पादन में और समाज के हर क्षेत्र में बढ़-चढ़कर हिस्सेदारी कर रही थीं। उनके लिए पहली बार एक सच्ची मानवीय गरिमा के साथ जीने के द्वार खुल गये थे। वेश्यावृत्ति, शराबखोरी और जुआखोरी जैसी असाध्य मानी जाने वाली सामाजिक बुराइयां दूर करने के लिए पार्टी और राज्य ने बकायदा अभियान चलाये, और इन्हें मिटा दिया गया। इन तमाम उपलब्धियों पर उस समय दुनिया का पूंजीवादी मीडिया भी कालिख नहीं पोत सका था। उसे मजबूरन इन सच्चाईयों को ईर्ष्यामिश्रित भाव से स्वीकार करना पड़ रहा था। लेकिन जैसा इतिहास में पहले भी हुआ है, क्रान्तियों के पहले संस्करण अक्सर पराजित ही हुए हैं। पूंजीवादी क्रांतियों का इतिहास भी ऐसा ही रहा है। 1956 के बाद सोवियत संघ में पूंजीवाद की फिर से बहाली इतिहास की ऐसी ही एक सच्चाई है। 1917 की सोवियत समाजवादी क्रान्ति की मशाल से रोशन होकर पूरी दुनिया में सामन्तवादी-पूंजीवादी-साम्राज्यवादी शोषण-उत्पीड़न के जुए के नीचे पिसती मानवता ने अपनी मुक्ति की कोशिशें तेज कर दीं।

यह रोशनी एशिया-अफ्रीका-लैटिन अमेरिका के उन देशों में भी पहुंची जो ब्रिटेन या किसी अन्य साम्राज्यवादी देश के गुलाम थे। ब्रिटेन की गुलामी के खिलाफ संघर्ष कर रही भारतीय जनता तक भी इस क्रान्ति की रोशनी पहुंची। भगत सिंह जैसे क्रान्तिकारी तो हिन्दुस्तान के अवाम की आजादी के लिए सोवियत क्रान्ति जैसी क्रान्ति के समर्थक बन चुके थे। उनका मानना था कि जब तक हिन्दुस्तान में भी रूस की तरह मज़दूर वर्ग के हाथ में सत्ता की बागडोर नहीं आयेगी तब तक हर प्रकार के शोषण-उत्पीड़न का खात्मा नहीं किया जा सकता।

अक्टूबर क्रान्ति की रोशनी हमारे पड़ोसी देश चीन तक भी पहुंची थी। वहां भी माओ त्से-तुङ जैसे महान क्रान्तिकारियों के नेतृत्व में मज़दूर किसान जनता की रहनुमाई करने वाली कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई। 1949 में इस पार्टी की अगुवाई में महान क्रांतिकारी लोकयुद्ध के जरिये साम्राज्यवादियों और उनके देशी दलालों की सत्ता को उखाड़ फेंककर जनता के जनवादी राज्य की स्थापना की गयी। सोवियत क्रान्ति के बाद मज़दूर वर्ग के नेतृत्व में यह दूसरी महानतम क्रान्ति थी। काफी टेढ़े-मेढ़े बीहड़ रास्तों से गुजरते हुए यह क्रांति लगातार आगे बढ़ती रही और मज़दूर वर्ग ने चीन में भी समाजवादी समाज बनाने की दिशा में लम्बे डग भरे। सोवियत संघ में पूंजीवादी तख्तापलट के अनुभव ने चीनी क्रान्तिकारियों को बेशकीमती सबक सिखाये थे। इसके आधार पर माओ त्से-तुङ, के नेतृत्व में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने समाजवादी समाज में पूंजीवाद की फिर से वापसी रोकने के सिद्धांत ढूंढ निकाले और 1966 में शुरू हुई महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के जरिये इसके अमल के कई ठोस रूपों को भी ईजाद कर लिया। लेकिन दुनिया के पैमाने पर साम्राज्यवाद के बोलबाले और देश के भीतर पार्टी, राज्य और समाज के भीतर पूंजीवादी तत्वों की मजबूत पकड़ अभी भी कायम रहने के चलते 1976 में चीन में भी मज़दूर वर्ग फिलहाल हार गया और पूंजीवादी वर्गों ने राज्यसत्ता पर कब्जा कर लिया। तब से लेकर आज तक चीन में भी रूस की ही तरह कम्युनिस्ट नामधारी सत्ताधारी पूंजीवाद के रास्ते पर सरपट दौड़ते जा रहे हैं।

लेकिन रूस और चीन की इन महान युगपरिवर्तनकारी क्रान्तियों की हार का यह मतलब कत्तई नहीं कि पूंजीवाद की अन्तिम जीत हो गयी है और मज़दूर वर्ग हमेशा के लिए हार गया है। इन हारों से उसे बेशकीमती सबक मिले हैं जिनकी रोशनी में नये चक्र की क्रान्तियों की दिशा में पहले से भी अधिक संकल्पबद्ध होकर दुनिया भर में मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी अगुवा हिस्से जुटे हुए हैं। ऐसे में मज़दूर वर्ग को हताश-निराश होने का कोई कारण नहीं है। मज़दूर वर्ग को इतिहास की इस सच्चाई को अच्छी तरह रचाने-पचाने की जरूरत है कि पूंजीवाद अजर-अमर नहीं है। वह अमृत का घट पीकर नहीं आया है। जैसे पुरानी शोषणकारी व्यवस्थाएं खत्म हुई हैं उसी तरह इसे भी खत्म होना ही है। यह इतिहास का अटल सत्य है।

आज विश्व पूंजीवाद पहले से भी अधिक बूढ़ा और जर्जर हो चुका है। विश्व पूंजीवाद के दुर्गों में ही नहीं बल्कि उसके अगवाड़े-पिछवाड़े सभी जगह कोहराम बचा हुआ है। मण्डलीकरण के नाम पर जिन हमलावर आर्थिक नीतियों के जरिये दुनिया के मेहनतकश अवाम को लूट-निचोड़ कर अपने मुनाफे को बचाने की कोशिशों में दुनिया के पूंजीपति जुटे हुए हैं वे उनके विनाश की ओर और अधिक तेजी के साथ लिये जा रही हैं। पूरी दुनिया के मज़दूर वर्ग के भीतर नयी सुगबुगाहटों के संकेत भी मिलने शुरू हो चुके हैं। पिछली शताब्दी के शुरूआती सालों में महान सोवियत समाजवादी क्रांति के धमाकों ने जिस तरह पूरी दुनिया के पूंजीपतियों के दिलों में खौफ चस्पां कर दिया था और मज़दूर क्रान्तियों की राहों को रौशन किया था, उससे मिलती-जुलती परिस्थितियां फिर बनती नजर आ रही हैं। एशिया-अफ्रीका-लैटिन अमेरिका के पिछड़े पूंजीवादी देश विश्व सर्वहारा क्रान्ति की पहले से भी कमजोर कड़ियां बन चुके हैं। क्रान्तियों का टाइम-टेबुल तो नहीं बनाया जा सकता लेकिन इतना जरूर दावे के साथ कहा जा सकता है कि यह अब शताब्दियों का नहीं बल्कि महज चन्द दशकों का मामला बनने जा रहा है। इन कमजोर कड़ियों में से अगर कोई एक भी कड़ी टूटती है तो फिर नयी समाजवादी क्रान्तियों के जिस सिलसिले की शुरूआत होगी वह अब बीच में कहीं नहीं रुकने वाली। यह पूंजीवाद-साम्राज्यवाद का क्रिया-कर्म करके ही रुकेगी।

कहने की जरूरत नहीं कि भारत भी विश्व सर्वहारा क्रान्ति के इस नये चक्र में एक महत्वपूर्ण कमजोर कड़ी बनने जा रहा है। देश के पूंजीवादी हुक्मरान साम्राज्यवादी लुटेरों से गांठ जोड़कर जिस रास्ते पर देश को ले जा रहे हैं वह पूंजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी नयी समाजवादी क्रान्ति की ओर ही जाता है। तबाही-बर्बादी का शिकार देश का मेहनतकश अवाम बहुत दिनों तक चुपचाप नहीं बैठा रहेगा। देश का मज़दूर वर्ग अपने पुराने, पिलपिले अर्थवादी-अवसरवादी नेतृत्व से पिण्ड छुड़ाकर नये सिरे से संगठित होने के लिए कसमसा रहा है। मज़दूर वर्ग के अगुवा हिस्से विश्व पूंजीवाद के शोषण-उत्पीड़न के नये-नये हथियारों का मुकाबला करने के लिए अपने नये हथियारों, संघर्ष की नयी रणनीति-रणकौशल ईजाद करने में जुटे हुए हैं। अक्टूबर क्रांति की मशाल उनकी राहों को रोशन कर रही है। पहले हमेशा से कहीं ज्यादा प्रकाशमान होकर। अक्टूबर क्रांति की मशाल की रोशनी में भारत का मज़दूर वर्ग विश्व सर्वहारा क्रांति के नये चक्र के महासमर के लिए कमर कस रहा है।

(पेज 9 से आगे)

नीबू और शिकंजा

भाइयो! आपका मालिक, आपका दुश्मन, वह पूंजीपति काफी माडर्न है। वह नयी-नयी मशीनें मंगाता रहता है। अब उसके पास ऐसी मशीन आ गयी है कि वह आपकी बची हड्डियों को भी पाउडर बनाकर बेचने के लिए तैयार है। इसका वह विज्ञापन करेगा .. दांत साफ करने का पाउडर। यह भी बाजार में चल निकलेगा।

... लेकिन मेरे भाइयों, नीबू तो बेचारा बेजान है। वह इंसान की तरह सोच तो सकता नहीं कि शिकंजे से बाहर निकलने की तरकीब सोचे, हाथ-पैर मारे। उसकी तो नियति है शिकंजे में फंसना, फिर निचोड़कर बाहर फेंक दिया जाना। लेकिन आप? आप तो जीते-जागते इंसान हैं। फिर क्या शिकंजे से बाहर निकलने की तरकीब नहीं सोच सकते।

यह तो आप अच्छी तरह समझ ही गये हैं कि शिकंजा है पूंजीपति और नीबू हैं आप। वह पूंजीपति जो अपने मुनाफे के लिए आपको निचोड़ डालता है। शिकंजा है वह ठेकेदार जो आपको सस्ते में खरीदता है और पूंजीपति को बेच देता है। शिकंजा हैं पूंजीपतियों के तलुए चाटने वाले वे राजनेता जो आपको जात-पांत, धर्म-कर्म के नाम पर बांटकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। शिकंजा हैं वे अफसर जो पूंजीपतियों की जी हुजूरी करते हैं और आप पर कानूनी डंडा भांजते हैं। एक और शिकंजा भी है। रंग-बिरंगा, मनमोहक, जादुई शिकंजा जिसे गढ़ते हैं सपनों के सौदागर ... फिल्म बनाने वाले ... निर्माता-निर्देशक, जो आपको ऐसी हसीन-रंगीन दुनिया की सैर कराते हैं जिसमें डूबकर आप शिकंजे से बाहर निकलने का न कोई ख्वाब देख सको, न कोई तरकीब ढूंढ सको। इस जादुई शिकंजे को, इस रंगीन जाल को भी आपको अच्छी तरह समझना होगा। यह सब है पूंजीवाद का शिकंजा।

... और इस शिकंजे से बाहर आप निकल सकते हैं। आपमें बहुत ताकत है। अपने अंदर छुपी हुई इस ताकत को आपको पहचानना ही होगा। आप अकेले नहीं हो। करोड़ों-करोड़ आपके भाई शिकंजे में फंसे हुए हैं। जरूरत है उनकी इस बिखरी ताकत को एक करने की। फिर एक ऐसी उमोघ शक्ति बनेगी जिसके जोर से यह शिकंजा चकनाचूर हो जायेगा। आप आजाद हो जाओगे।

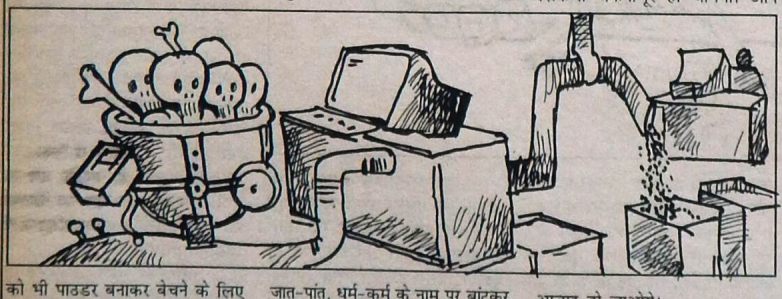

इस भ्रम से बाहर निकलो कि आप पिछले कर्मों का फल भोग रहे हो। पंडित-मुल्लाओं ने ये तमाम बातें गढ़ी हैं, तुम्हें बेवकूफ बनाने के लिए। अपने पिछले कर्मों की इस सड़ी-गली कुण्डली को काले पानी की सजा सुना दो। अपने हाथों खुद नयी कुण्डली का निर्माण करो। ... शिकंजे में फंसे रहना बेजान नीबू की नियति हो सकती है ... पर आप तो इंसान हैं, धड़कते दिल और दिमाग वाले इंसान, फिर इंसान की तरह जीने के रास्ते पर चलने में देर क्यों? भाइयों, उठो, जागो, गहरी नींद से, जगाओ अपने सोते हुए भाइयों को। नयी दुनिया तुम्हारा इंतजार करती खड़ी है।

(पेज 7 से आगे)

पार्टी की बुनियादी

को लागू करते वक्त जिन सदस्यों को विभिन्न कामों की जिम्मेदारी सौंपी गई है, उन्हें सचिव की देखरेख, नियंत्रण और नेतृत्व को मानना ही चाहिए, और जब भी कोई महत्वपूर्ण चीज घटित हो या उनके कामों में नई समस्याएं आ जाएं तो उनसे खुद ही निपट लेने की कोशिश करने के बजाय सचिव से परामर्श करना चाहिए और उससे निर्देश लेने चाहिए। अगर दैनिंदिन कार्यों के दौरान सचिव और अन्य पार्टी कमेटी सदस्यों के बीच गंभीर मतभेद पैदा हो जाएं, या कोई महत्वपूर्ण समस्या खड़ी जो जाए, तो कमेटी को अवश्य मिलना चाहिए और मामले पर विचार के बाद एक निर्णय पर अवश्य पहुंच जाना चाहिए : अकेले न तो सचिव और न ही कोई कमेटी सदस्य कोई फैसला ले सकता है।

सामूहिक नेतृत्व और व्यक्तिगत जिम्मेदारी को मिलाने वाली व्यवस्था लागू करने के लिए नए और पुराने काडर के बीच के संबंध के साथ-ही-साथ उत्पादन में भागीदारी करने वाले कमेटी के सदस्यों और इससे हटाए गए लोगों के बीच के संबंध को सही ढंग से संभालना भी जरूरी है। पुराने और नए काडरों को *''एक-दूसरे की इज्जत करनी चाहिए, एक-दूसरे से सीखना चाहिए और एक-दूसरे के मजबूत पक्षों से सीखकर खुद अपनी कमियों को ठीक करना चाहिए, ताकि एक साझे लक्ष्य के लिए एकजुट हुआ जा सके और संकीर्ण प्रवृत्तियों से बचा जाए।''* (माओ त्से-तुङ, संकलित रचनाएं, खण्ड-III, ''पार्टी की कार्यशैली में सुधार करो'', पृ.-47, अंग्रेजी संस्करण) जो कमेटी सदस्य उत्पादन में शरीक नहीं होते उन्हें उत्पादन में लगे रहने वाले सदस्यों की इज्जत करनी चाहिए, उन्हें ''सूचनाओं के आदान-प्रदान'' में पहल लेनी चाहिए, और लोगों की अल्पसंख्या से परामर्श करके ही संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए, या उत्पादन में भागीदारी करने वाले सदस्यों को कमेटी के लिए ''गौण पुछल्ला'' नहीं समझना चाहिए। दूसरी तरफ उत्पादन में हिस्सा लेने वाले पार्टी कमेटी सदस्यों की जिम्मेदारी यह है कि उन्हें सम्पूर्णता में कामों से सरोकार रखना चाहिए, उन्हें जनता की राय का आईना बनना चाहिए और बस अपने काम के क्षेत्र से सरोकार रख कर संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। संक्षेप में, नए या पुराने, उत्पादन में शामिल या उत्पादन से बाहर के, काडरों को विनम्र और दूरदर्शी होना चाहिए। एक दूसरे से सीखना चाहिए, बंटी हुई रस्सी के समान एक में मिला होना चाहिए, ताकि वे साथ-साथ अध्यक्ष माओ की क्रांतिकारी कार्य दिशा को लागू कर सकें और क्रांति और निर्माण में और भी बड़ी जीतें हासिल करने के लिए पार्टी के सदस्यों और जनता की अगुवाई कर सकें।

क्रमशः

मां के नाम एक मज़दूर की पाती

आदरणीय अम्मा,

बहुत दिनों से सोच रहा था कि तुम्हें चिट्ठी लिखूं। मगर क्या लिखूं, कैसे लिखूं, यह सूझ ही नहीं रहा था। अभी भी यही सोच रहा हूं कि चिट्ठी में ऐसा क्या लिख पाऊंगा जो तुम्हें ढाढ़स दे सकेगा।

यह पूछना भी बेमतलब का लग रहा है कि तुम्हारी आंखों और घुटनों का दर्द अब कैसा है? तुम तो इसे अब अपनी नियति का फेर ही मान बैठी होगी। कहती भी हो कि 'बेटा अब जब देह छूटेगी तभी यह दर्द भी साथ छूटेगा।' लेकिन तुम जो नहीं कह पाती वही मुझे हर घड़ी बेचैन किये रहता है। तुम्हारे मन में बैठी वह हल्की सी आस कि परदेस से तुम्हारा बेटा जब रुपया कमाकर लौटेगा तब शायद तुम अपना ढंग का इलाज करा सकोगी। तुम चाहे जो कहो लेकिन तुम्हारी आंखों में जो जीने की चाहत है उसे मैं भला कैसे नहीं महसूस कर पाऊंगा। आखिर तुम्हारा बेटा जो ठहरा।

अम्मा, क्या बताऊं! यहां रोज कारखाने-कारखाने भटक रहा हूं, मगर ढंग का काम कहीं नहीं मिल पा रहा है। एकाध जगह मिला भी तो 12 घण्टे काम के बदले 1200 रुपये। अब इस नोएडा जैसी जगह में खुद कैसे जिऊं, घर क्या भेजूं। समझ में नहीं आ रहा है। यहां मुर्गी के दड़बे जैसे कमरे का किराया 5-6 सौ रुपये है। बाकी बचे छह सौ रुपये में मुश्किल से एक आदमी का गुजारा ही हो सकता है।

तुम कहोगी कि वापस घर क्यों नहीं लौट आते? लेकिन सोचो तो अम्मा, वहां की जिंदगी में भी तो यही तबाही-बरबादी है। वहां कहने को तो हमारे पास थोड़ा-मोड़ा खेत है। अगर उससे हमारा गुजारा चल पाता तो फिर मैं यहां हजारों मील दूर, तुमसे इतना दूर, मैं आता ही क्यों? खेत की जुताई, खाद-पानी के कर्ज में ही क्या हमेशा तबाह नहीं रहते थे? फिर वहां कोई दूसरा काम भी तो नहीं मिल पा रहा था।

अम्मा, याद है न वह समय, जब हमारी हालत आज से भी बुरी थी। बाबूजी कर्ज में डूबे थे। महाजन के तगादे और बेइज्जती के डर से बाबूजी घर पर देर रात को सिर्फ सोने आते थे और मुंह अंधेरे घर से निकल पड़ते थे। दिन भर ऐसे ही मारे-मारे फिरते थे। 12-13 साल की उम्र में ही मैं तुम्हारे साथ माला गूंथने वाला काम करने लगा था। कब दिन बीतता था, कब रात, पता ही नहीं चलता था। बस किसी तरह पेट की आग बुझा पाते थे। फिर किसी तरह बाबूजी को चपरासी की नौकरी मिली थी, तब जाकर हालत थोड़ी सुधर पायी थी।

नहीं अम्मा, वहां वापस लौटकर आने से भला क्या होगा? यहां आकर कम से कम फर्क जरूर महसूस कर रहा हूं। यह देखकर मन को थोड़ी तसल्ली जरूर मिलती है कि हम अकेले ही मुसीबत के मारे नहीं हैं। हमारे जैसे लाखों मज़दूर यहां दिन-रात खट रहे हैं। तुम्हारी तरह इन सबकी मांएं होंगी। उनके दुख और पीड़ाएं भी हमारे-तुम्हारे जैसी ही होंगी। यहां कइयों की जिंदगी हमसे-तुमसे भी बदतर है। यह चीज मैं वहां रहते कभी इस तरह नहीं महसूस कर पाया।

इसलिए, मां अभी घर वापस लौटने का कोई मन नहीं है। यहीं अपने जैसे लाखों-लाख लोगों के साथ जिंदगी से जूझते हुए शायद कोई रास्ता निकले। वहां अकेले-अकेले तो कोई रास्ता निकला नहीं।

जैसे अंधेरे में कोई रोशनी की लकीर उभरती है, कुछ-कुछ इसी तरह आस की एक हल्की सी किरन झिलमिलाती नजर आने लगी है। अपने जैसे गरीब-मज़दूर जात की बदहाली का कारण कुछ-कुछ समझ में आने लगा है। अम्मा तुम्हें बताऊं कि यहां कुछ साथी मिले हैं जिनके साथ कभी-कभी बैठकर चर्चा होने से बड़ी ताकत मिलती है। साथी देश भर के मज़दूरों की एका की बात करते हैं। एक होकर अपनी जिंदगी बदलने के लिए लड़ने की बात करते हैं। कहते हैं जैसे अंग्रेजों से लड़े वैसे ही मज़दूरों का खून चूसने वाले देशी जोंकों से लड़ना होगा। मज़दूरों का राज बनाने की बात करते हैं। ये बातें धीरे-धीरे मन में बैठ रही हैं। हो सकता है इसी राह पर चल पड़ूं।

अम्मा, अब आगे क्या लिखूं। जो कुछ नहीं लिख पा रहा हूं, तुम उसको समझ ही लोगी। आखिर तुम मेरी अम्मा जो ठहरी। समझ ही लोगी।

आखिर में, अम्मा तुम दुखी मत होना। जिंदगी की आस मत छोड़ना। जैसे इससे भी कठिन समय तुम गुजार लायीं, वैसे ही अब भी आस की डोर मत छोड़ना। अपने लिए न सही, अपने बेटे के लिए। और सिर्फ अपने बेटे के लिए ही क्यों, क्या मेरे जैसे लाखों-लाख और बेटे नहीं हैं।

किराया-भाड़ा का पैसा जुटते ही मिलने आऊंगा। तुम्हारी याद हर घड़ी मुझमें समायी रहती है।

बाकी फिर!

तुम्हारा बेटा

बोलते आंकड़े - चीखती सच्चाइयां

- विश्व की कुल आबादी छः अरब है। इसमें तकरीबन एक दशमलव एक अरब लोगों को पीने का पानी नहीं मिलता। करीब दो दशमलव चार अरब आबादी बुनियादी स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य सफाई सुविधाओं से वंचित है। जबकि धरती का सत्तर प्रतिशत हिस्सा जल से घिरा है।

- भारत जैसे देशों में प्रतिवर्ष बाइस लाख लोग गंदे पानी से पैदा होने वाली बीमारियों के कारण मर जाते हैं। इसके अलावा इन देशों के अधिकांश लोग उन बीमारियों से ग्रस्त हैं, जो गंदे पानी की वजह से पैदा होती हैं।

- आंकड़े बताते हैं कि साफ पानी और स्वच्छता प्रबंध की गारंटी कर देने मात्र से ही भारत जैसे देशों में रोगियों और मरने वालों की संख्या पचहत्तर प्रतिशत कम की जा सकती है।

- नब्बे के दशक में चालीस देशों की सालाना प्रति व्यक्ति आय तीन प्रतिशत की दर से बढ़ी है जबकि अस्सी से अधिक देश ऐसे रहे जिनकी प्रति व्यक्ति आय वृद्धि दर अस्सी के दशक से भी कम हो गयी।

- आज भी अमेरिका जैसे विकसित देशों में प्रति व्यक्ति ऊर्जा उपभोग भारत जैसे विकासशील देशों से करीब दस गुना ज्यादा है।

- अमेरिका विश्व में सबसे ज्यादा प्रदूषण फैला रहा है। आंकड़ों के हिसाब से हर अमेरिकी व्यक्ति प्रतिवर्ष लगभग 5000 टन कार्बन वातावरण में फैला देता है।

- डलहौजी यूनिवर्सिटी में हुए एक अध्ययन के अनुसार सन 80 के दशक में अफ्रीका के सहेल क्षेत्र में पड़े भयंकर सूखे की असल वजह उत्तरी अमेरिका व यूरोप का प्रदूषण (खासतौर पर औद्योगिक प्रदूषण) था।

- संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) के अनुसार हिन्द महासागर के ऊपर एक से तीन मील तक की ऊंचाई पर व करीब एक करोड़ वर्ग मीटर क्षेत्रफल तक प्रदूषण फैलाने वाले महीन कणों (एरोसाल्स) की मोटी चादर फैली है। इसमें मौजूद 85 प्रतिशत ऐरोसाल्स मोटरवाहनो, बिजलीघरों व उद्योगों के धुएं के कारण हैं।

- यूनेप के कार्यकारी निदेशक क्लास टफायर के मुताबिक एशिया के पश्चिमी हिस्सों में पड़े सूखे और अनियमित वर्षा का कारण यही धुंध है। इन महीन कणों की मौजूदगी से वायुमंडल की खुद को साफ करने की कुदरती शक्ति बेहद क्षीण पड़ जाती है या खत्म हो जाती है।

राजनीतिक भंडाफोड़ और "क्रान्तिकारी क्रियाशीलता का प्रशिक्षण"

-व्ला.इ.लेनिन

ईस्क्रा[1] के मुकाबले में "आम मज़दूरों की क्रियाशीलता को बढ़ाने" का अपना "सिद्धान्त" पेश करके मार्तीनोव[2] ने वास्तव में इस क्रियाशीलता का महत्व कम करके आंकने की प्रवृत्ति का परिचय दिया, क्योंकि उन्होंने उसी आर्थिक संघर्ष को, जिसके गुण सारे "अर्थवादी" गाते रहे हैं, इस क्रियाशीलता को बढ़ाने का अधिक वांछनीय, सबसे महत्वपूर्ण और "सबसे अधिक व्यापक उपयोगयोग्य" उपाय तथा उसके लिए सबसे व्यापक क्षेत्र बताया। यह गलती बहुत लाक्षणिक है, ठीक इसलिए कि अकेले मार्तीनोव ने ही यह गलती नहीं की है। सच्ची बात यह है कि "आम मज़दूरों की क्रियाशीलता को" केवल इस शर्त पर "बढ़ाया" जा सकता है कि हम अपने को सिर्फ "आर्थिक आधार पर राजनीतिक आन्दोलन चलाने" तक ही सीमित न रखें और राजनीतिक आन्दोलन के आवश्यक विस्तार की एक बुनियादी शर्त यह है कि सर्वांगीण राजनीतिक भंडाफोड़ का संगठन किया जाये। इस तरह के भंडाफोड़ के अलावा और किसी तरीके से जनता की राजनीतिक चेतना और क्रान्तिकारी क्रियाशीलता पोषित नहीं की जा सकती। अतएव इस प्रकार का काम पूरे अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक-जनवादी आंदोलन के सबसे महत्वपूर्ण कामों में से एक है, क्योंकि राजनीतिक स्वतंत्रता मिलने पर भी इस प्रकार का भंडाफोड़ नहीं हटाया जाता, उससे केवल इन भंडाफोड़ों की दिशा का क्षेत्र बदल जाता है। उदाहरण के लिए, जर्मन पार्टी खास तौर पर अपनी स्थिति को मज़बूत कर रही है और अपना असर फैला रही है, और इसका कारण यही है कि वह अथक उत्साह के साथ राजनीतिक भंडाफोड़ कर रही है। मज़दूर वर्ग की चेतना उस वक्त तक सच्ची राजनीतिक चेतना नहीं बन सकती, जब तक कि मज़दूरों को अत्याचार, उत्पीड़न, हिंसा और अनाचार के सभी मामलों का जवाब देना, चाहे उनका संबंध किसी भी वर्ग से क्यों न हो, नहीं सिखाया जाता। और उनको सामाजिक-जनवादी दृष्टिकोण से जवाद देना चाहिए, न कि किसी और दृष्टिकोण से। आम मज़दूरों की चेतना उस समय तक सच्ची वर्ग चेतना नहीं बन सकती, जब तक कि मज़दूर ठोस और सामयिक (फौरी) राजनीतिक तथ्यों और घटनाओं से दूसरे प्रत्येक सामाजिक वर्ग का उसके बौद्धिक, नैतिक एवं राजनीतिक जीवन की सभी अभिव्यक्तियों में अवलोकन करना नहीं सीखते, जब तक कि मज़दूर आबादी के सभी वर्गों, स्तरों और समूहों के जीवन तथा कार्यों के सभी पहलुओं का भौतिकवादी विश्लेषण और भौतिकवादी मूल्यांकन व्यवहार में इस्तेमाल करना नहीं सीखते। जो लोग मज़दूर वर्ग को अपना ध्यान, अवलोकन और चेतना पूर्णतया या मुख्यतया भी, केवल अपने पर केन्द्रित करना सिखाते हैं, वे सामाजिक-जनवादी नहीं हैं, क्योंकि मज़दूर वर्ग के आत्मज्ञान का अटूट संबंध आधुनिक समाज के सभी वर्गों के बीच पारस्परिक संबंधों की मात्र पूर्णतः स्पष्ट सैद्धान्तिक समझदारी से ही नहीं है, ज्यादा सही कहें तो, इतना सैद्धान्तिक समझदारी से नहीं है जितना कि राजनीतिक जीवन के अनुभव से प्राप्त व्यावहारिक समझदारी से है। यही कारण है कि हमारे "अर्थवादी" जिस विचार का प्रचार करते हैं, यानी यह कि आर्थिक संघर्ष जनता को राजनीतिक आन्दोलन में खींचने का वह तरीका है, जिसका सबसे अधिक व्यापक रूप में उपयोग किया जा सकता है, वह अपने व्यावहारिक महत्व में बहुत अधिक हानिकारक और घोर प्रतिक्रियावादी विचार है। सामाजिक-जनवादी बनने के लिए जरूरी है कि मज़दूर के दिमाग में जमींदार और पादरी, बड़े सरकारी अफसर और किसान, विद्यार्थी और आवारा आदमी की आर्थिक प्रकृति का और उनके सामाजिक तथा राजनीतिक गुणों का एक स्पष्ट चित्र हो। उसे इन लोगों के गुणों और अवगुणों को जानना चाहिए, उसे उन नारों और बारीक सूत्रों का मतलब समझना चाहिए, जिनकी आड़ में प्रत्येक वर्ग तथा प्रत्येक स्तर अपना स्वार्थ और अपने "दिल की बात" छुपाते हैं, उसे समझना चहिए कि विभिन्न संस्थाएं तथा कानून किन स्वार्थों को और किस प्रकार व्यक्त करते हैं। परंतु यह "स्पष्ट चित्र" किसी किताब से नहीं मिल सकता: वह केवल उसके सजीव दृश्य प्रस्तुत करके तथा भंडाफोड़ करके हासिल हो सकता है, जो संबद्ध घड़ी में हमारे चारों ओर घटित हो रहा है, जिसके बारे में सभी अपने ढंग से, शायद फुसफुसाते हुए, बातें करते हैं, जो अमुक-अमुक घटनाओं में, अमुक-अमुक आंकड़ों में, अमुक-अमुक अदालती सजाओं, आदि-आदि में अभिव्यक्त होता है। जनता को क्रान्तिकारी क्रियाशीलता का प्रशिक्षण देने की एक जरूरी और बुनियादी शर्त यह है कि इस प्रकार के सर्वांगीण राजनीतिक भंडाफोड़ किये जायें।

जनता के साथ पुलिस पाशविक दुर्व्यवहार करती है, धार्मिक संप्रदायों को बुरी तरह सताया जाता है, किसानों को कोड़ों से पीटा जाता है, सेंसर की निंदनीय व्यवस्था कायम की जाती है, सिपाहियों को यातनाएं दी जाती हैं, निर्दोष से निर्दोष सांस्कृतिक संगठनों या कार्रवाइयों का दमन किया जाता है, आदि - परंतु रूसी मज़दूर इन तमाम बातों को लेकर कोई खास क्रान्तिकारी कार्रवाई नहीं करते, आखिर इसका क्या कारण है? क्या यह बात इसलिए नहीं है कि "आर्थिक संघर्ष" इस प्रकार की कार्रवाई के लिए उन्हें "प्रेरणा" नहीं देता, इसलिए नहीं कि इस तरह के काम से कोई "ठोस नतीजे" निकलने की "उम्मीद" नहीं होती, इसलिए नहीं कि इससे बहुत कम "सकारात्मक" चीज प्राप्त होती है? नहीं, हम फिर कहते हैं कि इस तरह का मत फैलाना महज उन लोगों के मत्थे दोष मढ़ना है जिनका कोई दोष नहीं है, यह खुद अपने कूपमंडूकपन (जो बर्नस्टीनवाद भी है) के लिए आम मज़दूरों को दोषी करार देना है। हमें अपने को, जन-आन्दोलन से हमारे पीछे रह जाने को, इस बात के लिए दोषी ठहराना होगा कि अभी तक हम इन तमाम घृणित अनाचारों का काफी व्यापक, जोरदार और शीघ्र भंडाफोड़ संगठित नहीं कर सके। जब हम यह काम करेंगे (और हमें यह काम करना चाहिए तथा हम क़र सकते हैं), तब पिछड़े से पिछड़ा मज़दूर भी समझने लगेगा या महसूस करने लगेगा कि विद्यार्थियों और धार्मिक संप्रदायों के सदस्यों पर, किसानों और लेखकों पर वे ही प्रतिक्रियावादी शक्तियां दमन और अत्याचार कर रही हैं, जो खुद मज़दूर को जीवन के पग-पग पर उत्पीड़ित और दलित कर रही हैं और जब वह इस बात को महसूस करने लगेगा, तो उसमें स्वयं इन तमाम अनाचारों का विरोध करने की प्रबल इच्छा पैदा होगी, और तब वह एक रोज सेंसर विभाग के अधिकारियों पर फिकरे कसेगा, तो दूसरे रोज उस गवर्नर के महल के सामने प्रदर्शन करेगा, जिसने बेरहमी से किसानों के विद्रोह को कुचला है, और तीसरे रोज पोपरियों के कपड़े पहने उन पुलिसवालों को सबक सिखायेगा, जिनके अत्याचारों को देखकर मध्ययुगीन धार्मिक न्यायालयों की याद ताजा हो जाती है, आदि। आम मज़दूरों के सामने नित नया और सर्वांगीण भंडाफोड़ करने के सिलसिले में हमने अभी बहुत कम, लगभग नहीं के बराबर काम किया है। हममें से बहुत से लोग अभी भी इसे नहीं समझते कि यह हमारा कर्तव्य है और अब भी हम कारखानों के जीवन की संकुचित सीमाओं के अंदर बंद हैं और स्वयंस्फूर्त ढंग से "नीरस दैनिक संघर्ष" के पीछे-पीछे घिसटते चलते हैं। ऐसी हालत में यह कहना कि "ईस्क्रा में आकर्षक एवं पूर्ण विचारों के प्रचार की तुलना में नीरस दैनिक संघर्ष की प्रगति के महत्व को कम करके आंकने की प्रवृत्ति दिखायी पड़ती है" (मार्तीनोव, पृ. 61) पार्टी को पीछे घसीटना और तैयारी के हमारे अभाव तथा पिछड़ेपन को उचित ठहराना तथा उसकी प्रशंसा करना है।

जहां तक कुछ कार्रवाइयों के लिए जनता का आह्वान करने का प्रश्न है, जैसे ही तेज राजनीतिक आन्दोलन शुरू होगा और सजीव तथा प्रभावोत्पादक ढंग से राजनीतिक भंडाफोड़ किया जायेगा, वैसे ही यह काम अपने आप होने लगेगा। किसी अपराधी को रंगे हाथों पकड़ लेना और उसे तुरंत जनता के सामने अपराधी घोषित कर देना, यह अपने आप में ऐसे कितने ही "आह्वानों" से कहीं अधिक कारगर होता है; अक्सर उसका ऐसा असर होता है कि यह बताना भी असंभव हो जाता है कि भीड़ का किसने "आह्वान" किया था और किसने प्रदर्शन, आदि की अमुक योजना सुझायी थी। आह्वान - यदि हम आम हवाई आह्वान नहीं करना चाहते, बल्कि उसके ठोस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग कर रहे हैं - तो केवल घटनास्थल पर ही किया जा सकता है; इस तरह का आह्वान केवल वे लोग ही कर सकते हैं, जो खुद मैदान में कूद पड़ते हैं, और फौरन कूद पड़ते हैं। सामाजिक-जनवादी पत्रकारों के रूप में हमारा काम यह है कि राजनीतिक भंडाफोड़ तथा राजनीतिक आन्दोलन को हम और गहरा, विस्तृत तथा तेज बनायें।

('क्या करें' का एक अंश)

1- ईस्क्रा(चिंगारी)- मज़दूरों का क्रान्तिकारी अखबार 2- एक अर्थवादी-सुधारवादी नेता

"जनता की सरकार" ने किया शिशु संहार

सामाजिक जिम्मेदारियों से मुंह मोड़ चुकी सरकारों की नजरों में आम इंसान की जान की कोई कीमत नहीं है। "हमारे" जनप्रतिनिधि आज ऐसे राज कर रहे हैं, जैसे पुराने निर्मम, हृदयहीन जागीरदार अपने बाप की जागीर पर राज करते थे। आये दिन ऐसी घटनाएं घट रही हैं, जिनमें शासन चला रहे सत्ताधारियों की घोर आपराधिक लापरवाही के कारण आम लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है, लेकिन सत्ताधारी बेशर्मी के साथ इन हादसों से पल्ला झाड़ लेते हैं। अपनी जवाबदेही से न सिर्फ किनारा कर लेते हैं, बल्कि दोष मरने वालों पर डाल देते हैं। ऐसा ही एक हादसा पिछले दिनों कोलकाता के विधानचंद राय अस्पताल में हुआ। जिसमें 1 सितम्बर को 24 घण्टे के भीतर 13 मासूम बच्चे अस्पताल में बदइन्तजामी के कारण मौत के शिकार हो गये। याद रहे कि पिछले कुछ बरसों में ऐसी कई घटनाएं घट चुकी हैं। लखनऊ के के.जी.एम.सी. अस्पताल में ठीक ऐसे ही हादसे में कई बच्चों की जानें चली गयी थीं।

कोलकाता के इन मासूमों की जान बचाई जा सकती थी, यदि अस्पताल में आक्सीजन सिलिण्डर और अन्य साधन पर्याप्त होते। अस्पताल के अधिकारी राज्य सरकार को पहले ही चेता चुके थे कि साधनों की कमी के कारण कोई हादसा हो सकता है। इस अस्पताल के अधीक्षक डा. अनूप मण्डल के अनुसार यदि सरकार जरा भी गंभीर होती तो यह हादसा टाला जा सकता

था। डा. मण्डल के अनुसार 40 आक्सीजन सिलिण्डर मिलते हैं, जबकि दूने की आवश्यकता होती है। अस्पताल में बेड की कमी है। कभी-कभी तो एक बेड पर चार बच्चों को लिटाया जाता है। उस अनुपात में डाक्टरों की भी कमी है। सरकारी उपेक्षा के कारण कोलकाता का यह जाना-माना शिशु अस्पताल नष्ट हो रहा है और मासूमों की जिन्दगी के साथ खिलवाड़ किया जा रहा है। दो महीने के दौरान दो सौ बच्चों की मौत हो चुकी है।

इतने बड़े हृदय विदारक हादसे के बाद प. बंगाल का स्वास्थ्य मंत्री कहता है कि अस्पताल की ताजा सालाना रिपोर्ट के अनुसार यहां की मृत्यु दर 3.39 प्रतिशत है ... इसलिए रविवार को हुई बच्चों की मौतें ऐसी घटना नहीं है जिस पर इतना हो हल्ला मचाया जाए। यह उस वाम मोर्चा के मंत्री का बयान है जो अपने को मेहनतकशों के रहनुमा होने का दावा करता है। प. बंगाल के वाम मोर्चा सरकार ने अभी पिछले दिनों ही अपनी "जनपक्षधर" सरकार के पच्चीस वर्ष पूरे होने पर गाजे-बाजे के साथ लाल पताकाएं फहरायी थीं। स्वास्थ्य मंत्री का बयान इनकी जनपक्षधरता के नकाब को उघाड़कर इनके असली जन विमुख चेहरे को सामने ला देता है। मन्त्री के बयान से टपक रही संवेदनहीनता को देखकर तो कब्र में पड़े बंगाल के जालिम जमींदार खुश हुए होंगे कि इन बहुरुपियों ने तो हमें भी मात दे दी।

इतनी बड़ी घटना के बावजूद मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य और स्वास्थ्य मंत्री सूर्यकांत मिश्र ने इतनी जहमत भी नहीं उठाई कि मौके पर जाकर अस्पताल का जायजा लिया जा सके। उन्होंने सिर्फ बयानबाजी और विभागीय जांच के आदेश देकर इस घटना से अपना पल्ला झाड़ लिया। आखिर ये बच्चे आम लोगों के थे। उन मेहनती लोगों के थे, जो अपने बीमार परिजनों को महंगे नर्सिंग होमों में भर्ती नहीं करा सकते थे। वे आम जन, जिनके वोटों को बटोरकर सत्ता में पहुंचा जाता है और लोकतंत्र का नाटक खेला जाता है। प. बंगाल की वाम मोर्चा सरकार भी इसमें माहिर हो चुकी है।

सारे तथ्य चीख-चीख कर कह रहे हैं कि बच्चों की मौत की जिम्मेदार राज्य सरकार है। डाक्टर तक इस बात को स्वीकार करते हैं कि यदि समय पर आक्सीजन सिलिण्डर सभी बच्चों को उपलब्ध कराये जाते तो अधिकांश बच्चों को बचाया जा सकता था। यानी ये मासूम बच सकते थे, अपनी जिन्दगी को जी सकते थे, यदि बीमारी से जूझ रहे इन बच्चों को सही उपचार मिल गया होता। इन बच्चों की मौत स्वाभाविक नहीं है। यह अस्वाभाविक मौत है। यह हत्या है, यह शिशु संहार है। इस शिशु संहार के लिये पूरी तरह प. बंगाल की वाम मोर्चा सरकार जिम्मेदार है।

इस घटना के अगले दिन स्थानीय लोगों ने विरोध प्रदर्शन किया। लेकिन यह प्रदर्शन सत्ता के मद में चूर नकली वामपंथियों की हृदयहीनता पर कोई चोट कर सका होगा, कहना मुश्किल है। इन सत्ताधीशों के तब तक होश ठिकाने नहीं आयेंगे, जब तक हम इनसे उम्मीद करना छोड़कर अपनी किस्मत के फैसले के लिए खुद आगे नहीं आ जाते। आखिरकार और कितनी बलियां देकर हम इस बात को समझेंगे कि ये चुनावबाज मदारी हमें इंसान नहीं बल्कि मात्र एक वोट समझते हैं। ये खुद को लोकतंत्र का सेवक कहते हैं, लेकिन सेवा मुनाफा तंत्र की करते हैं। आखिर और कितने मासूमों की जानें और जायेंगी, जब हम यह समझेंगे कि मुनाफाखोरों के राज को उखाड़ फेंकना हमारी जिन्दगी की जरूरत बन चुका है।

❑ मोहन

अब भइया समाजवाद कइसे कहाई?

चीन की कम्युनिस्ट नामधारी पार्टी की सोलहवीं कांग्रेस हमारे देश की एक कम्युनिस्ट नामधारी पार्टी के लिए मुसीबत बन गयी है। भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी लिबरेशन गुट) चीनी पार्टी को अब तक लाल सलाम भेजती है और "चीनी विशेषताओं वाले समाजवाद" के नाम पर कम्युनिस्ट नामधारी पूंजीवादी शासकों की तपरफदारी करती है, लेकिन अब उसके लिये चीनी पार्टी की सोलहवीं पार्टी की कांग्रेस के प्रस्तावों को पचा पाना मुश्किल हो गया है। उसकी मुसीबत यह है कि वह अपने कतारों को किस मुंह से चीनी पार्टी को लाल सलाम ठोंकने के लिए कहे।

चीनी पार्टी की सोलहवीं कांग्रेस में खुद उसके महासचिव जियांग जेमिन ने प्रस्ताव रखा है कि पार्टी की सदस्यता देश के पूंजीपतियों के लिए खोल दी जानी चाहिए। उनके अनुसार पार्टी बदलते हालात की सच्चाइयों को नजरअंदाज नहीं कर सकती। अब पार्टी में समाज के तीन स्तरों का प्रतिनिधित्व होना चाहिए- मजदूर, किसान और पूंजीपति। यानी अब चीन की कम्युनिस्ट नामधारी पार्टी पूंजीपतियों के प्रति अपनी उदारता को और बढ़ाते हुए सत्ता में सीधी हिस्सेदारी देने के पक्ष में है। 1976 में चीन में पूंजीवादी पुनर्स्थापना के बाद उभरा यह नया पूंजीपति वर्ग बेचारा अब तक पार्टी को सिर्फ लेवी (नियमित धनराशि) देकर पर्दे के पीछे से सत्ता में बैठे अपने भाड़े के टट्टुओं के जरिये काम चला रहा था। लेकिन अब वह सीधे फ्रण्ट पर आना चाहता है और पार्टी भी उन्हें सदस्यता के लिए हरी झण्डी देकर पूंजी के प्रति अपनी स्वामिभक्ति का खुल्लम-खुल्ला मुजाहिरा कराना चाहती है।

भाकपा (मा-ले, लिबरेशन) के नेतृत्व का राजनीतिक मोतियाबिन्द कहिए या 'जान के भी कुछ भी न जाने" वाली चतुराई कहिए, 1976 में माओ त्से-तुङ की मृत्यु के बाद हुआ-कुआं फेङ और देङ सियाओ पिङ के नेतृत्व में हुए पूंजीवादी तख्ता पलट नहीं नजर आया। अब देङ सिआओ पिङ ने विदेशी पूंजी के लिए देश के दरवाजे खोलने, देश के भीतर निजी उद्यमियों को छूट देने की पूंजीवादी नीतियों पर चलना शुरू किया और नारा दिया कि 'अमीर होना शान की बात है', तब भी 'लिबरेशन' के नेतृत्व को कुछ गड़बड़ी नहीं नजर आयी। विनोद मिश्र उस समय 'लिबरेशन' के महासचिव थे। उन्होंने 'सात रंगों वाले समाजवाद' की थीसिस पेश की। कहा कि समाजवाद का केवल एक रंग नहीं होता। उसकी इन्द्रधनुषी छटा होती है। देङ सियाओ पिङ के "उत्पादक शक्तियों के विकास" के सिद्धान्त के आधार पर आगे बढ़ रहे चीन के 'खास रंग' के समाजवाद पर 'लिबरेशन' नेतृत्व लट्टू था। दुनिया भर के पूंजीवादियों के सुर में सुर मिलाते हुए विनोद मिश्र भी चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना रोकने के महान प्रयोग को 'महाविपदा' मानते थे। विनोद मिश्र पर 'सतरंगे समाजवाद' का जादू कुछ इस तरह छाया था कि जब चीनी पार्टी ने 'बाजार समाजवाद' का नारा उछाला तो 'लिबरेशन' नेतृत्व को तब भी होश नहीं आया। मजदूर वर्ग के चीनी गद्दारों द्वारा पूंजीवादी बाजार और समाजवाद के इस गंदे मेल को भी चीन की ठोस परिस्थितियों का जाप करते हुए उन्होंने चीनी समाजवाद को भला चंगा बताया। विनोद मिश्र आज जीवित नहीं हैं।

विचारधारात्मक जादूगरी को करिश्मा दिखाकर वे कतारों व समर्थक बुद्धिजीवियों को जोड़े रखते थे। लेकिन अब नये नेतृत्व की जान सांसत में पड़ी है कि वह चीनी पार्टी की सोलहवीं कांग्रेस के प्रस्तावों को कौन सा करिश्मा दिखाकर वह 'सतरंगे समाजवाद' के चौखटे में रखे, उसे यह सूझ नहीं रहा है।

भाकपा (माले-लिबरेशन) का पार्टी अधिवेशन भी नवम्बर के तीसरे हफ्ते में पटना में होने वाला है। इस अधिवेशन की वैचारिक तैयारियों में चीनी पार्टी की सोलहवीं कांग्रेस गले की फांस बन गयी है। अब चीनी पार्टी की भूतपूर्व होने जा रहे महासचिव जियांग जेमिन तो लाज-हया के सारे पर्दे उतारकर चीनी पार्टी में पूंजीपतियों की खुल्लमखुल्ला घुसपैठ के रास्ते बना गये हैं। चूंकि अभी घोषित तौर पर उन्होंने मार्क्सवाद का दामन नहीं छोड़ा है, इसलिए वे इस कदम को भी मार्क्सवादी शब्दावली में जायज ठहरा रहे हैं। उन्होंने कहा कि पार्टी के दरवाजे "उन्नत उत्पादक शक्तियों" (यानी पूंजीपतियों) के लिए खुले कर दिये गये हैं। लेकिन भाकपा (लिबरेशन) का नेतृत्व अभी इतना बेहया होने के लिए तैयार नहीं है। पार्टी की कतारें बगावत कर सकती हैं। समर्थक बुद्धिजीवी पल्लू झाड़ सकते हैं। इसलिए चीनी कांग्रेस के प्रस्तावों पर 'लिबरेशन' ने 'चिंता' व्यक्त की है। यह 'चिंता' किस गंभीर चिंतन का रूप लेगी। इस चिंतन से विचारधारात्मक जादूगरी का कौन सा नया खेल सामने आता है, यह पटना अधिवेशन में पेश दस्तावेजों से ही पता चल सकेगा। लेकिन 'लिबरेशन' नेतृत्व की यह दुविधा वाकई दिलचस्प है। कि "भइया चीन क? समाजवाद समाजवाद कइसे कहाई?"

हालांकि विचारधारात्मक जादूगरी की विरासत चूंकि विनोद मिश्र छोड़ गये हैं, इसलिए बहुत से लोग आश्वस्त हैं कि नया नेतृत्व 'ठोस परिस्थितियों" में आये इस नये बदलाव का "ठोस विश्लेषण" कर मार्क्सवादी जामा पहनाने में कामयाब हो जायेगा। यूं भी इस पार्टी ने नक्सलबाड़ी और चारु मजूमदार की विरासत के साथ संसदीय राजनीति में "शांतिपूर्ण संक्रमण" करने का करिश्मा जिस विचारधारात्मक हाथ की सफाई दिखाकर किया है वह हैरतअंगेज है। फिलहाल ऐसा लगता है कि अब चीन के समाजवाद को भला-चंगा कहने से पार्टी परहेज करे और चीनी पार्टी को लाल सलाम भेजना बंद कर दे, क्योंकि इस बार अस्तित्व का गंभीर सवाल उठ खड़ा हुआ है।

आनन्द देव

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
संपादक मण्डल : डा. दूधनाथ, मुकुल। सम्पादकीय पता : 69, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006, सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ।